कथा और लोक संस्कृति
(संदर्भः–काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य)

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ के हिन्दी विभाग में
मास्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

लघु शोध–प्रबन्ध

BABASAHEB
BHIMRAO
AMBEDKAR
UNIVERSITY
LUCKNOW
प्रज्ञा शील करूणा
ESTABLISHED 1996

शोध–निदेशक
डॉ0 सर्वेश कुमार सिंह
(सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष)
हिन्दी विभाग

शोधार्थी
शर्मा नन्द
पंजीयन क्रमांक.: 1513/19
हिन्दी विभाग

हिन्दी विभाग
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
2020

माता–पिता

एवं

शिक्षकगण को समर्पित

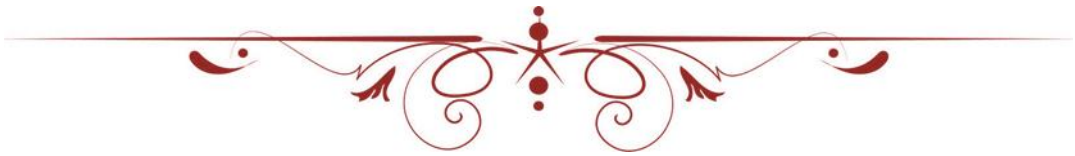

घोषणा–पत्र

मैं, **शर्मा नन्द** यह घोषणा करता हूँ कि **"कथा और लोक संस्कृति (संदर्भः–काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य)"** प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध मेरे द्वारा संग्रहित तथ्यों पर आधारित है तथा मास्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत यह लघु शोध–प्रबंध मेरा मौलिक कार्य है। इसे अंशतः या पूर्णतः इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह शोध कार्य मैंने **डॉ0 सर्वेश कुमार सिंह,** सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के निर्देशन व मार्गदर्शन में पूरा किया है।

मैं घोषणा करता हूँ कि इस शोध कार्य को पूरा करने में मैंने विश्वविद्यालय के शोध संबंधित सभी नियमों का पालन किया है। मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि यह शोध कार्य पूर्णतः साहित्यिक चोरी से मुक्त है।

दिनांक : 24/12/2020

शोधार्थी

Sharmanand

शर्मा नन्द
पंजीयन क्रमांक : 1513 / 19
हिन्दी विभाग,
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ

CERTIFICATE

This is to certify that the M.Phil. Dissertation titled **"कथा और लोक संस्कृति (संदर्भः–काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य)"** submitted by **Mr. Sharma Nand** is an original research work and has not been previously submitted in part or full for the award of any other degree or diploma to this or any other university.

The M.Phil. Dissertation submitted to Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow satisfies all the requirements as stipulated in the Master of Philosophy (M.Phil.) Regulations (2016) as amended in 2019 and it is fit for submission and evaluation for the award of the degree of Master of Philosophy of the University.

Date: 24/12/2020

24.12.2020

Supervisor

(सर्वेश कुमार सिंह)

24.12.2020

Head of the Department

विभागाध्यक्ष/Head
हिन्दी विभाग/Deptt. of Hindi
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow

भूमिका

भूमिका

हिंदी के वरिष्ठ लेखक काशीनाथ सिंह की लेखनी में कुछ विशिष्टताएं हैं जो उन्हें हिंदी के अन्य लेखकों से अलहदा करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में भाषा को लेकर सर्वथा नए प्रयोग किए हैं अतः वे निश्चय ही यह प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में भूमंडलीकरण, बदलते भारतीय समाज, शिक्षा–व्यवस्था, मानवीय मूल्यों के पतन, पारिवारिक विघटन साथ ही अनेक ज्वलंत समस्याओं को उकेरा है।

'कथा और लोक संस्कृति'(संदर्भः काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य) से अभिप्राय है कि उनके कथा लेखन में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा स्त्री चेतना का स्वरूप किस प्रकार से व्यक्त हुआ है। रचनाकार जिस परिवेश में रहता है उसकी अभिव्यक्ति उसकी लेखनी में स्पष्ट झलकती है। काशीनाथ सिंह उन कथाकारों में से हैं जिन्होंने सातवें दशक के बाद कथा साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके कथा साहित्य में लोक(साधारण जन जीवन) की सहज अभिव्यक्ति सर्वत्र विद्यमान है। उनकी रचनाओं में सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक मुद्दों से मुठभेड़ होती है। विगत छः दशकों से साहित्य में सक्रिय रहे जबकि इनके ज्यादातर समकालीनों ने कब की कलम से विदा ले ली। काशीनाथ सिंह की विशेषता है कि वे अपने आप को दोहराते हुए नजर नहीं आते हैं। उनके लेखन में एक अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग है। इसका उदाहरण उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'काशी का अस्सी' में देख सकते हैं जिसमें उन्होंने काशी की संस्कृति का बखूबी वर्णन किया है। वर्णन में जीवंतता लाने के लिए उन्होंने काशी की ठेठ भाषा और गाली गलौज के शब्दों के प्रयोग से भी परहेज नहीं किया है। वहीं इनका दूसरा उपन्यास 'उपसंहार' है जिसमें भाषा का संयत और शांत रूप का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा लोक जीवन से संपृक्त है जिसका कारण उनकी ठेठ ग्रामीण चेतना है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काशीनाथ सिंह हिंदी साहित्य के विशिष्ट लेखक हैं।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध को सुविधा के लिए छः अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय 'कथा और लोक संस्कृति : स्वरूप' के अन्तर्गत कथा के स्वरूपगत विकास तथा लोक और लोक संस्कृति की परिभाषा देते हुए विस्तार से विचार किया है।

द्वितीय अध्याय 'कथा और लोक संस्कृति : हिंदी कथा परम्परा के परिप्रेक्ष्य में' के अन्तर्गत हिंदी कथा की परम्परा का विस्तृत से विवेचन किया गया है। हिंदी कथा के दोनों रूपों (कहानी, उपन्यास) में परम्परा का अनुशीलन करते हुए लेखकों की कृतियों का अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में विवेचित साहित्य मुख्यतः लोक साहित्य है।

तृतीय अध्याय 'कथा और लोक संस्कृति : काशीनाथ सिंह के उपन्यास' में काशीनाथ सिंह के उपन्यासों (अपना मोर्चा, काशी का अस्सी, रेहन पर रग्घू, महुआचरित, उपसंहार) का विवेचन विश्लेषण किया गया है। काशीनाथ सिंह एक शिक्षक थे जिन्होंने जमीन से जुड़ी समस्याओं को बहुत बारीकी से देखा, छात्रों की समस्या एवं छात्र आंदोलन के कारण, शासन प्रशासन की निरंकुशता, आदि को व्यक्त किए हैं। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप मानवीय मूल्यों के विघटन, सामाजिक संरचनाओं का टूटना, मानवीय रिश्तो की डोर कमजोर पड़ना, गांव से शहर को पलायन होना, ग्रामीण संस्कृति पर नगरी संस्कृति का वर्चस्व, जैसी समस्या देखने को मिलती हैं।

चतुर्थ अध्याय 'कथा और लोक संस्कृतिः काशीनाथ सिंह की कहानियाँ' के अन्तर्गत काशीनाथ सिंह के कहानियों में लोक संस्कृति के बदलते स्वरूप का वर्णन किया गया है। स्त्री पुरुष समानता पर बल, संबंधों का अर्थ केंद्रित होना आदि को दिखाया गया है। नौकरी के दौरान लोग अपने जीवन के सुखद पलों को खो बैठते हैं, और अपने परिवार से कम स्नेह रख पाते हैं। काशीनाथ सिंह 'सुख' कहानी के माध्यम से लोगों को सूचित करते हैं कि प्रकृति से प्रेम करें, और अपनों के सुख दुख को पहचानें।

पंचम अध्याय 'काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य और लोक संस्कृति : एक आलोचनात्मक अध्ययन' के अन्तर्गत कथा साहित्य का आलोचनात्मक ढंग से विवेचन किया गया है, एवं भाषा, शिल्प, संवाद, आदि पर प्रकाश डाला गया है।

'उपसंहार' के अंतर्गत समग्र कथा साहित्य का अवलोकन, मूल्यांकन करके यह देखते हैं कि किस कारण से लोक संस्कृति पर नगरी संस्कृति हावी हो रही है, क्या कारण है कि पाश्चात्य सभ्यता को स्वीकारते चले जा रहे हैं, और मानवीय मूल्यों के पतन की पड़ताल की गई।

किसी भी विषय पर शोध करने से पहले जो एक महत्वपूर्ण एवं दुष्कर कार्य होता है वह है शोध विषय का चयन एवं शोध प्रस्ताव की प्रारंभिक रूपरेखा तैयार करना। शोधार्थी जब शोध प्रस्ताव बनाने का प्रयत्न कर रहा होता है उस समय उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में शोधार्धी विद्वतजनों से शोध विषय के चयन एवं शोध की रूपरेखा तैयार करने में चर्चा परिचर्चा, सुझाव एवं सहायता की अपेक्षा रखता है। ऐसी स्थिति में मेरे शोध के विषय के चयन एवं शोध की प्रारंभिक रूपरेखा तैयार करने में हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. सर्वेश कुमार सिंह ने अपेक्षित सहयोग किया।

यह मेरे सौभाग्य का विषय है कि **डॉ. सर्वेश कुमार सिंह** ही मेरे शोध निर्देशक हैं। 'कथा और लोक संस्कृति'(संदर्भः– काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य) विषय पर कार्य करते समय सर के सहयोग एवं मार्गदर्शन की आश्यकता बनी रही। लघु शोध प्रबंध को अंतिम रूप देने में शोध निर्देशक की कुशल मार्गदर्शन का विशेष योगदान रहता है। सर ने बड़ी सहजता एवं गंभीरता से मेरा मार्गदर्शन किया। शोध विषय में मुझसे अधिक रुचि लेकर आपने मेरी शोध समस्याओं एवं कठिनाइयों का निराकरण किया। आपके इस बहुमूल्य योगदान का मैं सदैव आभारी रहूँगा। डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव, डॉ. शिवशंकर यादव, डॉ. प्रीति राय, डॉ. नमिता जैसल, आप सभी का शोध

कार्य को पूर्ण करने में समय–समय पर अपेक्षित सुझाव एवं सहयोग मिला। आप सभी का ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

हिंदी विभाग के कर्मचारी जीत कुमार एवं उनके सहकर्मियों साथ ही पुस्तकालय एवं विश्वविद्यालय परिसर के समस्त कर्मियों से कार्यालयी कार्यों के संपादन में विशेष सहयोग मिला। अतः आप सभी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

आज मेरा लघु शोध प्रबंध पूर्ण हो रहा है यह मुझसे अधिक मेरी माता श्रीमती विद्या देवी एवं पिता श्री राम कुमार यादव के लिए खुशी एवं आह्लाद का विषय है। विषम आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद संघर्ष पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए आप दोनों के कठिन परिश्रम एवं त्याग से मैं यहां तक पहुँच सका हूँ। आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरी कृतघ्नता होगी। बस यही चाहता हूँ कि आप दोनों का साथ, प्यार एवं आशीर्वाद हमेशा यूं ही बना रहे। बड़े भैया सुशील, हौशिल, जिन्होंने कठिन परिश्रम करके मुझे आर्थिक सहयोग दिए, कन्हैया भैया बड़े भैया होने के साथ साथ हमारे गुरु भी हैं जिन्होंने हमारे शोध की कठिनाईयों में सहयोग किए। मेरी छोटी प्यारी बहना सोनम यादव जो बहुत ही नटखट है, लड़ती झगड़ती रहती है, विकट परिस्थितियों में मुझे बहुत सहयोग करती है। समस्त परिवारजनों को ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने हर पल सहयोग किया।

मेरे प्रिय मित्र रामतेज और हिमांशी गंगवार जिन्होंने मेरे लघुशोध प्रबंध को पूर्ण करने में बहुत योगदान दिया। और अन्य मित्र भी निरंतर सहयोग करते रहते हैं। लघु शोध प्रबंध तैयार करने में स्वदेश कुमार जी का भी सहयोग रहा है जिन्होंने टंकण का कार्य किया एवं शोध प्रबंध को अंतिम रूप दिया। अतः आप सभी का सदैव आभारी रहूंगा।

शर्मा नन्द

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अध्याय	विवरण	पेज संख्या
	भूमिका	....
प्रथम अध्याय	कथा और लोक संस्कृति : स्वरूप	1–9
द्वितीय अध्याय	कथा और लोक संस्कृति : हिन्दी कथा परंपरा के परिप्रेक्ष्य में	10–25
तृतीय अध्याय	कथा और लोक संस्कृति : काशीनाथ सिंह के उपन्यास	26–56
चतुर्थ अध्याय	कथा और लोक संस्कृति: काशीनाथ सिंह की कहानियाँ	57–73
पंचम अध्याय	काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य और लोक संस्कृति: एक आलोचनात्मक अध्ययन	74–87
	उपसंहार	88–93
	संदर्भ ग्रंथ सूची	94–98

प्रथम अध्याय
कथा और लोक संस्कृति : स्वरूप

प्रथम अध्याय
कथा और लोक संस्कृति : स्वरूप

'कथा' शब्द की उत्पत्ति 'कथ्' धातु से हुई है जिसका अर्थ 'वह जो कहा जाय' है। 'कथा' किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, परिवेश से संबंधित हो सकती है लेकिन वह एक सुसंबद्ध नियम में बद्ध होती है जिससे कथा अर्थपूर्ण प्रभाव डालती है। हिंदी साहित्य कोश में कथा को परिभाषित किया गया है "कथा का विशिष्ट अर्थ हो गया है, किसी ऐसी घटना का कहना, वर्णन करना, जिसका निश्चित परिणाम हो।"[1]

कथा को अन्य नामों से भी जानते हैं – कहानी, वार्ता, किस्सा। संस्कृत साहित्य में कथा को 5 भागों में विभाजित किया गया है– आख्यायिका, कथा, खण्ड कथा, परिकथा, कथालिका। हिंदी साहित्य के गद्य में मुख्यतः दो विधाएं सर्वाधिक प्रचलित हैं– कहानी एवं उपन्यास। कथा के विषय में रविद्रनाथ टैगोर का मानना है कि "नदी जैसे जलसूत्र की धारा है, मनुष्य भी वैसे ही कथा का प्रवाह है। जब से मनुष्य सृष्टि में आया तभी से उसमें कथा कहने तथा सुनने की प्रवृत्ति भी आई। अतः कथा का अस्तित्व सास्वत है और निरन्तर प्रक्रिया के रूप में कथा सुनने और सुनाने की प्रक्रिया भी अनादि काल तक चलती रहेगी।"

भारत में प्राचीन काल से ही लोक कथाओं की मौखिक परंपरा चली आ रही है और यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में लगातार हस्तांतरित होती रही है। आधुनिक युग में मुद्रण कला के विकास के फलस्वरूप इसे लिखित रूप प्रदान किया जा सका। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य नाटक और प्रबंध काव्य में कथा तत्व का प्रयोग मिलता रहा है। गोपाल राय के अनुसार "भारत में प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग तीसरे चरण तक कथा का प्रयोग प्रबंध

काव्य और नाटक में गौण तत्व के रूप में होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रण यंत्र के बाद 'कथा' न केवल बाल बुद्धि के मनोविनोद के लिए पुस्तक का रूप ग्रहण करने लगी, वरन वह लेखक के विचारों, भावों और नैतिक बोध की अभिव्यक्ति का साधन भी बनने लगी। हिंदी की 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती', 'परीक्षा गुरु', 'चंद्रकांता' आदि पुस्तकें इसकी प्रमाण है। कथा के इन्हीं रूपों से हिंदी में उपन्यास और कहानी का विकास हुआ।"[2] कथा के माध्यम से लेखक अपने विचारों, भावों को व्यक्त करने में सफल रहा है।

लोक

'लोक' शब्द प्राचीन शब्द है। इसका उल्लेख वेदों में पाया जाता है। 'ऋग्वेद' में इसका उल्लेख साधारण 'जनता' के रूप में कई बार आया है। ऋग्वेद में लोक के स्थान पर 'जन' शब्द का प्रयोग भी मिलता है–

"य इमे रोदसी उभे; अहमिंद्रमतुष्टम।

विश्वामित्रस्य रक्षति; ब्रह्में दं भारतंजनम।।"[3]

ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में लोक तथा सर्वलोक शब्दों में प्रत्यय लगाने पर लौकिकः तथा सार्वलौकिकः शब्दों को जन्म दिया तथा इन्होंने वेद से पृथक लोक शब्द को महत्व दिया।पतंजलि ने जनसाधारण के अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग किया है। "महर्षि व्यास ने महाभारत की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ अज्ञान रूपी अज्ञान से व्यथित लोक(साधारण जनता) की आंखो को ज्ञान रूपी अंजन की श्लाका लगाकर खोलने वाला है।"[4] भगवतगीता में लोक तथा लोक संग्रह का वर्णन किया गया है।

लोक शब्द का अर्थ

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' में घञ् प्रत्यय लगाने से बनता है। 'लोक' शब्द से ही 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका अर्थ सर्वसाधारण जनता होता है। लोक शब्द से आशय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करते हैं।

लोक की परिभाषा

'लोक' शब्द की परिभाषा को कुछ विद्वानों ने परिभाषित किया है – डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "लोक शब्द अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं।"[5] डॉ कुंज ने 'लोक' की परिभाषा इस प्रकार दी है "जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन परिस्थिति में वर्तमान है उन्हें ही लोक कहा जाता है।"[6]

संस्कृति

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है। जो समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अंतर्निहित है। संस्कृति का अर्थ है परिष्कृत करना या संस्कारित करना। संस्कृति शब्द का अर्थ है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति।

सभ्यता संस्कृति का ही एक रूप है संस्कृति और सभ्यता में केवल अंतर इतना है कि संस्कृति का तात्पर्य वैचारिक या मानसिक है तथा सभ्यता से

तात्पर्य है –बाहरी अर्थात् भौतिक। अर्थात् संस्कृति का संबंध मन या आत्मा से है किन्तु सभ्यता का संबंध समाज के बाह्य स्वरूप से है – जैसे यदि कोई व्यक्ति केवल तन ढकने के लिए वस्त्र धारण करता है तो वह सभ्यता है किन्तु यदि वह मन को अच्छी लगने के लिए धारण करता है तो वह संस्कृति है। इसी प्रकार भोजन भी यदि व्यक्ति केवल भूख मिटाने के लिए करता है तो वह सभ्यता है किन्तु मन को अच्छा लगने के लिए यदि भोजन करता है तो वह संस्कृति कही जाएगी। कला, संगीत, नृत्य इत्यादि संस्कृति के ही अंतर्गत आते हैं क्योंकि कला, संगीत, नृत्य इत्यादि के द्वारा हम मनोरंजन करते हैं। किसी देश की संस्कृति उसकी संपूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती हैं। संस्कृति एक व्यक्ति के पुरुषार्थ का फल नहीं है बल्कि असंख्य व्यक्तियों के पुरुषार्थ का फल है।

संस्कृति का संबंध व्यक्ति के आध्यात्मिक पक्ष से है। संस्कृति हमें जीवन जीने का तरीका सिखाती है। मानव संस्तुति का निर्माण करता है व साथ ही साथ संस्कृति मानव को मानव बनाती है। संस्कृति परिवर्तनशील है। ज्ञान, विचार और परंपराएं नई संस्कृति के साथ अंद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं तथा समय बीतने पर विशिष्ट संस्कृति में परिवर्तित हो जाते हैं।

लोक संस्कृति

लोक संस्कृति के लिए अंग्रेजी में जिस फोकलोर शब्द का प्रयोग किया जाता है उसका अर्थ परम्परागत कथाएं और विश्वास या लोक विश्वास माना जाता है। फोकलोर दो शब्दो से मिलकर बना है फोक और लोर। फोक का अर्थ, लोग, जनसाधारण माना जाता है। जर्मन में इसे अवसा कहते हैं। फोक शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ बार्कर कहते हैं– फोक शब्द से आशय सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। विस्तृत अर्थ में देखा जाय तो फोक का अर्थ असंस्कृत लोग। लोर शब्द एंग्लो सैमसन शब्द लर से

बना है जिसका अर्थ ज्ञान या विद्या है। फोकेलोर का अर्थ – सामान्य जनता का ज्ञान।

टाम्स ने फोकालोर शब्द की व्याख्या देते हुए कहा कि इसे सर्वसाधारण जनता का ज्ञान कहा जाएगा। कृष्णदेव उपाध्याय ने फोकेलर के स्थान पर लोक संस्कृति को स्वीकार करने पर बल देते हुए कहा है "फोकलोर के लिए 'लोक संस्कृति' शब्द फोकलोर शब्द के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ है।"[7] प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि प्राचीन काल से ही इस देश में दो अलग अलग संस्कृतियां दिखाई पड़ती हैं 1–शिष्ट संस्कृति 2–लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति का आशय अभिजात वर्ग की संस्कृति से है इसमें लोग बहुत पढ़े–लिखे विद्वान होते थे इनकी भाषा आमजन से पृथक होती थी लेकिन लोक संस्कृति से हमारा आशय जनसाधारण वर्ग की संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी। इस संस्कृति का विकास बौद्धिकता के निम्न धरातल पर स्थित है।

लोक संस्कति में स्थायित्व का तत्व अधिक होता है जबकि परिवर्तनशीलता बहुत कम। लोक संस्कृति जनसामान्य की संपत्ति होती है। समाज का अधिक शिक्षित तथा धनी वर्ग अपनी शिष्ट संस्कृति के नशे में आगे बढ़ता जाता है। वह हमेशा अपनी संस्कृति को परिवर्तित करना चाहता है। शिष्ट संस्कृति में परिवर्तन सिघ्रता से होता दिखाई देता है जबकि लोक संस्कृति में परिवर्तन मंद होता है तथा स्थायित्व अधिक। शिष्ट संस्कृति (नगरीय संस्कृति) कुछ समय के लिए हमे आकर्षक लग सकता है। क्योंकि नगरीय संस्कृति में कृत्रिमता अधिक मात्रा में देखने को मिलती है जैसे – वस्त्राभूषण, पहनावा सभी महंगे हैं। लोक संस्कृति में ग्राम की भाषा, लोक के गीत, लोक की रहन सहन, सामुदायिकता की भावना, सब बहुत आकर्षक होते हैं। गांव के लोग एक दूसरे की समस्या, परेशानी को अपनी समस्या मानकर एक दूसरे का सहयोग करते हैं।

लोक संस्कृति में जो उनके गीत होते हैं उनमें दुख–सुख आदि की अभिव्यक्ति होती है। यह हमें अत्यंत प्रभावित करता है। शास्त्रीय संगीत उतना प्रभावित नहीं करता जितना लोक संस्कृति। लोक संस्कृति अशिक्षित वर्ग में पुष्पित पल्लवित होता है इनके अपने गीत, बिरहा, चैता, फगुआ, चौताल का बहुत महत्व है। अत्याधुनिक समय में लोक संस्कृति का प्रदर्शन लज्जा, गंवारपन, पिछड़े का प्रतीक माना जाता है लेकिन आज लोक संस्कृति को बिखरते देख कर लोगों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है। अब लोक संस्कृति पर लोग बहुत काम कर रहे हैं।

सोफिया बर्न ने फोकलोर (लोक संस्कृति) को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है– 1 लोक विश्वास, 2 रीति रिवाज तथा प्रथाएं, 3 लोक साहित्य। परन्तु लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। "इसके अंतर्गत पिछड़ी हुई जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों के अवशिष्ट लोक विश्वास, रीति रिवाज आते हैं।"[8]

1. लोक संस्कृति के उद्देश्य विद्वानों ने निम्न प्रकार का माना है–
2. लोक संस्कृति नवयुवकों की शिक्षा में सहायक होती है।
3. लोक संस्कृति किसी समुदाय की संगठन शक्ति की पुष्टि करना जिससे समाज में स्वीकार की हुई पद्धतियों को स्थिरता प्रदान करती है।
4. लोक संस्कृति सामाजिक विरोध का माध्यम होती है।
5. लोक संस्कृति यथार्थता से पलायन और किसी मनहूस कार्य को खेल तथा प्रसन्नता के रूप में स्वीकारता है।

लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक के रूप में होती है। पं० बलदेव उपाध्याय के अनुसार "लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों, तथा क्रिया कलापों के पूर्ण

परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित है।"[9] लोक संस्कृ ति में निश्चल प्रेम सहयोग की भावना का विशेष योगदान रहा है यहां प्रकृति ईश्वर एवं श्रम की पूजा अपने–अपने ढंग से करते हैं यहां अपने के साथ सभी लोगों के लिए शुभ मंगल कामना करते हैं विश्व बंधुत्व की भावना होती है किसी स्थान का लोकजीवन वहां की संस्कृति की परिचायिका होती है लोक संस्कृति का रस सामान्य जनता के हृदय में समाहित रहता है। प्रो० हरिशंकर आदेश कहते हैं कि "संस्कृति जीवन शैली होती है। जिसका निर्माण एक दिन में न होकर शनैः शनैः शताब्दियों में हो पाता है।"[10]

लोक साहित्य लोक या सामान्य जन के मानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह प्रायः अलिखित और मौखिक परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में ज्ञान का स्थानांतरण होता रहता है। इसमें किसी भी प्रकार का व्याकरणीक नियम, शास्त्रीय पद्धति की रचना नहीं मिलती है। लोक गाथा, लोक गीत, पहेलियां, लोकोक्तियों, आदि लोक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। लोक नाट्य के अन्तर्गत जात्रा, कीर्तन,नौटंकी, यक्ष गान, स्वांग, रामलीला, आदि आता है। लोक में जो गीत होते हैं सुख दुख के गीत होते हैं। जो उन्हें सुखद अनुभूति प्रदान करते हैं। आर्थिक रूप से देखा जाए तो लोक कला, लोक जीवन की मेरुदंड होती है। लोक जीवन में बंधुत्व की भावना अधिक मात्रा में पाया जाता है। प्रेम सेवा की भावना का स्थान उच्च होता है। "भारतीय जीवन के अनंत स्रोतों का मूल उद्‌गम लोक संस्कृति ही है। संस्कृति शब्द बहुत ही व्यापक और गंभीर अर्थ का बोधक है। मेरे समझ में सुधरे हुए, संवारे हुए संस्कारों और आचार – विचार का समुच्चय ही संस्कृति है। भारतीय संस्कृति का संस्कार लोक संस्कृति द्वारा ही हुआ है। यह लोक संस्कृति अपने प्रकृति रूप में आज भी हमारे गाँवों, जगलों और पर्वतों में प्रकृति की छाया में अपना अस्तित्व रखे हुए हैं।"[11]

लोक संस्कृति का विशेष स्वरूप गाँवों में ही देखा जाता है, गाँवों में ही लोक संस्कृति के तत्व मिलते हैं। " भारतीय लोक संस्कृति की आत्मा भारतीय साधारण जनता है, जो नजरों से दूर गाँवों, वन – पर्वतों में निवास करती है। 'आत्मौपम्यन सर्वत्र' यही भारतीय लोक संस्कृति का सिद्धांत है। इसी सिद्धांत का स्वभावतः पालन करती हुई भारतीय साधारण जनता ब्रह्मतत्व और मायातत्व को अनजाने समझती है। भारतीय ग्रामवासिनी संस्कृति के मूलाधार, जिन्हें आजकल की परिभाषा में अपढ़, वनेचर कहा जाता है, भारतीय संस्कृति के जीवित, जाग्रत प्रहरी है।"[12]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्मा, (सं०) धीरेन्द्र, हिंदी साहित्य कोश, भाग 1 परिभाषिक शब्दावली, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, 2002, पृष्ठ 158

2. राय, गोपाल, हिंदी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 19

3. उपाध्याय, कृष्णदेव; लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2014, पृष्ठ – 8

4. वही, पृष्ठ – 9

5. वही, पृष्ठ – 10

6. वही, पृष्ठ – 10

7. वही, पृष्ठ – 25

8. वही, पृष्ठ – 16

9. वही, पृष्ठ – 12

10. गोयनका, (सं०) कमल किशोर, हिन्दी भाषा : स्वरूप शिक्षण, वैश्विकता; संस्करण 2015, पृष्ठ – 68

11. किशोर, आचार्य युगल, लोक साहित्य का प्रकृत रूप(लेख), (सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति), पृष्ठ – 1

12. कविराय, महामहोपाध्याय गोपिराय, (सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति विशेषांक) पृष्ठ – 22

द्वितीय अध्याय
कथा और लोक संस्कृतिः हिंदी कथा परम्परा के परिप्रेक्ष्य में

द्वितीय अध्याय

कथा और लोक संस्कृतिः हिंदी कथा परम्परा के परिप्रेक्ष्य में

कहानियों के संदर्भ में –

संस्कृत साहित्य के पश्चात प्राकृत और अपभ्रंश के आख्यानक काव्यों में कौतूहल द्वारा रचित लीलावती कथा और धारिल कवि की 'पउमसिरि चरिउ' की कथाएं प्राप्त होती है। हिंदी कथा परम्परा में इनकी छाप मौजूद है।

आदिकाल जिसे ग्रियर्सन ने 'चारण काल' कहा है, में कथाएं दो रूपों में मिलती है। 'ढोला मारुरा दोहा', 'माधवानंद कामकंदला', 'हिर–रॉझा', 'कुतुबसतक', 'मैनासत', 'त्रियाविनोद', आदि पद्यबद्ध है। ''सिंहासन बत्तीसी', 'बगले हॅसिणी कथा', फुटकर वार्ता संग्रह काव्य है।"[1] इसी काल में कविता के रूप में नरपति नाल्ह ने 'बिसलदेव रासो' और चंदबरदाई ने पृथ्वीराज रासो जैसे कथात्मक काव्यों की रचना की। "इन कथाओं में प्रायः एक ही मूल संवेदना है कि कोई राजा किसी रानी से प्रेम करता है, अथवा किसी राजा को अपने तमाम विवाहों में अनेक युद्ध करने पड़ते हैं।"[2]

मध्यकालीन हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यों में लौकिक, कल्पित अथवा मिश्रित प्रेम कथाओं में आध्यात्मिकता का मिश्रण करके इन कवियों ने विस्तृत कथात्माक संवेदना के साथ कथा तत्व और कथा शिल्प को बनाए रखा है। ये मध्यकालीन आख्यानक काव्य मुख्य रूप से 'मृगावती', 'मधुमालती' 'पद्मावत', चित्रावली आदि है, जिनमें पद्मावत का महत्वपर्ण स्थान है।

भक्ति काल की सगुण काव्य धारा में कृष्ण काव्य भले ही मुक्तकों में मौजूद है लेकिन कृष्ण संबंधी वृहद आख्यान में भारतीय जीवन एवं संस्कृति के अनेक रूप मौजूद हैं। ब्रज के गोचारण, दोहन, रास आदि का चित्रण इसके

उदाहरण है। दूसरी तरफ राम काव्य लोक और शास्त्र के द्वंद्व से सिंचित है। जिसमें एक तरफ संस्कृत साहित्य, दर्शन एवं विचारधारा का पुष्ट है तो दूसरी तरफ लोक में चलने वाले सोहर, विवाह गीत एवं भारतीय जीवन का आदर्श मौजूद है। इसी प्रकार रीतिकालीन साहित्य भी कहीं न कहीं यथा संभव लोक रस एवं राग रंग से परिपूर्ण है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय कथा – साहित्य वैदिक संस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी लोक साहित्य, रासो काव्य, प्रेमाख्यानक और वार्ताओं तक कथा तत्व बिखरा हुआ है और कथा तत्व में लोक संस्कृति भी रची बसी है। इन कहानियों का साहित्यिक से ज्यादा ऐतिहासिक महत्व भले ही ज्यादा हो, लेकिन एक बात साफ तौर पर स्पष्ट है कि भारतीय कथा परम्परा में साहित्य का लोक संस्कृति से पुराना रिश्ता रहा है।

उपर्युक्त विवरण उन्नीसवीं सदी के पूर्व भारतीय साहित्य के समस्त कथा रूपों एवं लोक संस्कृति के परस्पर संबंध की मोटी–मोटी रूपरेखा है। जिसे आज आधुनिक हिंदी कहानी की संज्ञा दी जाती है, उसके विकास पर दृष्टि डालते ही 'रानी केतकी की कहानी' और 'नासिकेतोपाख्यान' जैसी रचनाएं सामने आती हैं, जो अपने कथ्य और संरचना दोनों दृष्टियों से परम्परागत कथा साहित्य की पंक्ति में खड़ी नजर आती है। इतना ही नहीं किसी न किसी रूप में बीसवीं शताब्दी के बाद भी यह प्रक्रिया बनी रही। डॉ लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है कि "इसी उदगम सूत्र से हिंदी कहानियों की उत्पत्ति को सबसे अधिक प्रेरणा मिली और उस समय प्रायः समस्त हिंदी कहानीकारों की पहली मौलिक रचनाएं इन्हीं लोक कहानियों की प्रतिमाएं थी। उदाहरण स्वरूप पहले हम 'सरस्वती' की आरंभिक कहानियों को लेते हैं। लाला पार्वतीनंदन की कहानियाँ 'प्रेम का फुवारा', 'भूतों वाली हवेली,' 'जीवनाग्नि', 'नरक', 'गुलजार' आदि स्पष्ट रूप से इन्हीं लोक कहानियों की प्रेरणा शक्ति से लिखी गयी है।"[3]

सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी द्वारा रचित 'इंदुमती' को हिंदी की प्रथम कहानी होने का श्रेय दिया जाता है। इसके बाद इस पत्रिका में भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल'(1902), रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय'(1903), गीरिजादत्त बजपेयी कृत 'पंडित और पण्डितानी (1903), बंग महिला कृत दुलाई वाली (1907) आदि कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इन सभी कहानियों में सामाजिक यथार्थ पर बल कम है और मार्मिकता और भाव प्रवणता का आधार किस्सागोई, किंवदंती प्रथा के कहन के ढंग में लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है।

इसके पश्चात प्रेमचंद युग में प्रेमचंद एवं उनके समकालीन रचनाकारों की कहानियों में जो अधिक स्पष्टता, सामाजिक यथार्थ की प्रवणता एवं देश की कहानियाँ कही गई हैं, उनकी कथा बुनावट में भारतीय जीवन की रीति – नीति, बोली – बानी, आचार – विचार, जाति – धर्म एवं संप्रदाय, त्यौहार, गीत संगीत मौजूद हैं। 'पूस की रात' और 'दो बैलों की कथा' भारतीय किसान जीवन की दुख – सुख, 'ईदगाह' ईद के त्यौहार से संबंधित है तो पंच परमेश्वर हिंदू – मुस्लिम सांप्रदायिक सद्भाव की कथा है। इन कहानियों में लोक एवं उसकी संस्कृति का वर्णन कथाकार के केंद्र में भले ही न रहा हो लेकिन गाहे–बगाहे लोक के राग – रंग अवश्य आए हैं।

जिस समय इलाहाबाद से 'सरस्वती' में एक बार एक कहानियॉ प्रकाशित हो रही थीं, उसी के समानांतर काशी से प्रकाशित इंदु(1909) में जयशंकर प्रसाद और पंडित विश्वंभरनाथ जिज्जा जैसे कहानीकारों की रचनाएं भी प्रकाशित होनी शुरू हुई। इन कहानियों में लोक संस्कृति इतिहास के गल्प के माध्यम से समाई हुए हैं।

प्रेमचंद के हिंदी कहानी लेखन के आसपास चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' आई थी। यह कहानी पूर्वदीप्ति शैली में रचित मूलतः प्रेमकथा है, जो कि प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। कहानी

प्रयुक्त भाषा, सरदारनी होरा सिंह का 'शालू' दिखाना (मतलब कि मेरा विवाह हो चुका) उसकी बोली– बानी सबके हाथ लोक संस्कृति में सने हुए हैं।

प्रेमचंद के पश्चात के रचनाकारों में हिंदी कहानी की दो धारा है। एक में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी है जिनके रचना विधान के केंद्र शहरी मध्यवर्ग एवं उनकी व्यक्तिगत कुंठा और उनके मनः स्थिति का चित्रण है। दूसरे शब्दों में "ग्रामीण सामाजिकता तथा समस्याओं के स्थान पर शहरी मध्यवर्ग और उसकी समस्याएं अपने विभिन्न पक्षों में कहानी का वर्ण विषय बनी।"[4] उदाहरण स्वरूप जैनेन्द्र की 'खेल', 'पत्नी', अज्ञेय की 'रोज' और इलाज में जोशी की कहानियों का नाम लिया जा सकता है जिसमें इन कहानीकारों ने "अपनी कहानियों में दमित – वासना, तज्जनित मानसिक विकृति एवं अंततः दमित काम – ग्रंथि के आधार को स्पष्ट करते हुए व्यक्ति के मानसिक उन्नयन पर बल दिया गया है।"[5] लेकिन दूसरी धारा सामाजिक यथार्थवाद की है जिसमें यशपाल, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उग्र, विष्णु प्रभाकर, अमृत लाल नागर आदि आते हैं। प्रेमचंदोत्तर युग में प्रेमचंद की मर्यादा को आगे बढ़ाने वाले यही रचनाकार हैं। इस धारा के कहानीकारों का लक्ष्य सामाजिक यथार्थ का चित्रण करना है लेकिन इनकी दृष्टि सामान्य अति सामान्य लोगों के जीवन पर केंद्रित होती है और इस क्रम में उनका लोग एवं उनकी संस्कृति भी आती है अश्क की अंकुर, नासूर, डाची, यशपाल की पर्दा, फूलों का कुर्ता, पिंजरे की उड़ान, राहुल सांकृत्यायन की वोल्गा से गंगा, सतमी के बच्चे आदि उसी प्रकार की कहानियां हैं।

हिंदी कहानी के इतिहास में आजादी एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जिसे प्रेमचंदोत्तर कहानी और उसके बाद की कहानी की विभाजक रेखा के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि आजादी ने हमें नए ढंग से सोचने और विचार करने की शक्ति प्रदान की। अब हमारा ध्यान उन पहलुओं पर स्वभावतः जाने लगा जिसकी कल्पना भी आजादी के पहले दूभर थी। आजादी के बाद विकास

के नए–नए साधनों की खोज हुई। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक सभी स्तरों पर परिवर्तन होने लगा। इसके साथ–साथ नई नई समस्याएं भी उभरी, जिसमें सांप्रदायिक दंगे, शरणार्थियों की समस्या, स्वार्थपरता का फैलता हुआ जाल, कालाबाजारी, जातिवाद का नए तरीके से फैलता हुआ मुँह, इसके उपरांत कुछ ही दिनों में आजादी से मोहभंग की स्थिति, निराशा, घुटन, कुंठा चारों तरफ अपना मुँह फैलाए जा रही थी। फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की कहानियों एवं आंदोलनों नई कहानी, अकहानी, समानांतर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी, समकालीन कहानी आदि का उदय हुआ। जिसमें अमरकांत, शिवप्रसाद सिंह, उषा प्रियंवदा, शेखर जोशी, भीष्म साहनी, शैलेश मटियानी, राजकमल चौधरी, मन्नू भंडारी, रामदरश मिश्र, कृष्ण बलदेव वैद्य, निर्मल वर्मा, मार्कण्डेय, फणीश्वर नाथ 'रेणु', नागार्जुन आदि प्रमुख कहानीकार एवं उनकी कहानियाँ प्रकाश में आयीं।

आजादी के बाद की कहानियों में यद्यपि लोक संस्कृति के रंग कहीं न कहीं छिट – फुट रूप में मौजूद है, लेकिन जिस कहानी ने लोक संस्कृति एवं लोक रंग को अपने रचना का आधार एवं कथा बनाया वह है आंचलिक कहानी। अंचल क्या है? "अँचल एक देहात हो सकता है, एक भारी शहर का एक मुहल्ला भी और इन सबसे दूर सघन बनों की उपत्यकाएं भी।"[6] और आँचलिकता क्या है? "अंचल का अर्थ है जनपद या 'क्षेत्र'। जिस कथा में विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जनजीवन का समग्र चित्रण, वहाँ की भाषा, वेशभूषा, धर्म, जीवन, समाज, संस्कृति और आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आएं, यह आंचलिक कृति होगी।"[7]

आँचलिक कथाकारों में सर्वप्रथम नाम फणीश्वर नाथ 'रेणु' का लिया जाता है अतः आँचलिक कहानियों में उन्हीं की कहानियाँ सर्वप्रथम मानी जाती है। यद्यपि रेणु आँचलिक उपन्यासकार के रूप में भी चर्चित है और उनके द्वारा रचित 'मैला ऑचल' उपन्यास को हिंदी के सर्वश्रेष्ठ आँचलिक उपन्यास की

संज्ञा दी जाती है। लेकिन इसकी चर्चा अन्यत्र की जाएगी। रेणु उपन्यास से पहले कहानी लेखन में सक्रिय हो चुके थे। उनके द्वारा रचित 'मैला आँचल' से पूर्व की कहानियों में भी आँचलिकता की स्थिति स्पष्ट है। उनकी कहानियों में उपन्यासों के बरक्स अधिक सुदृढ़ भाषा क्षमता के दर्शन होते हैं। यह बात उनकी अपनी प्रथम कहानी 'बट बाबा (1944) से लेकर बाद की कहानियों में भी कही जा सकती है। इस संदर्भ में एक बात की तरफ और ध्यान जाता है कि रेणु के उपन्यासों की संख्या सात है– 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', जुलूस, 'कितने चौराहे', पल्टू बाबू रोड और उनके द्वारा रचित अब तक उपलब्ध कहानियों की संख्या तिरसठ है, लेकिन मैला आँचल और परती परिकथा को छोड़कर बाकी उपन्यास आँचलिकता की अवधारणा पर खरे नहीं उतरते। जबकि उनकी कहानियाँ आद्यन्त आँचलिकता की अवधारणा का निर्वहन करती है।

फणीश्वर नाथ रेणु ने ग्रामाँचल के साथ–साथ नगरॉचल प्रधान कहानियाँ भी लिखी हैं। दोनों तरह की कहानियों में उनकी दृष्टि से आँचलिकता ओझल नहीं होने पाती। नागर जीवन की कहानियाँ भी वहां की ऑचलिकता घनीभूत हो जाती है। ग्रामीण कहानियों के उदाहरण के रूप में 'पंचलाइट', 'ठुमरी','ठेस', 'लाल पान की बेगम', का नाम लिया जा सकता है तो 'टेबुल', 'विकट संकट','लफड़ा', आदि कहानियॉ नगरॉचल का प्रतिनिधित्व करती हैं। तात्पर्य यह कि रेणु ने अपनी कहानियों में ग्राम एवं शहर दोनों को केंद्र बनाकर रचना की एवं उसके साथ साथ ग्राम एवं नगर जीवन के जन सामान्य की बानी, उस विशिष्ट क्षेत्र का जीवन, अंधविश्वास, पर्वोत्सव, रूढ़ियां, मुहावरे, गीत, नृत्य अर्थात् वहाँ का लोक एवं संस्कृति का जीवंत चित्रण किया है।

ऑचलिक कहानियों के लेखन में शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, मार्कण्डेय का नाम उल्लेखनीय है। शिवप्रसाद सिंह ने 'कर्मनाशा की हार',

'माटी की औलाद', 'गंगा तुलसी', आदि कहानियों में पूर्वी उत्तर प्रदेश गाँवों का यथार्थ अंकित किया है। "वह संपूर्ण अंचल और ग्राम परिवेश अपने सरे स्पंदन के साथ उनकी कहानियों में मूर्त हो उठा है, जिसका उन्होंने चित्रण किया है। आपकी कहानियों में आँचलिकता और खड़ी बोली का प्रशंसनीय संतुलन है।"[8] (फणीश्वरनाथ रेणु की भूमिका से) मार्कण्डेय भारतीय ग्राम के जनजीवन को निरूपित करने में सजग है। इन्होंने ग्रामीण भावभूमि विशेषकर अंचल विशेष के चित्रण में प्रगतिशीलता दिखाई है।'हंसा जाई अकेला','भाई', पान फूल आदि संग्रह इस बात के साक्ष्य हैं। अधिकांशतः निम्न वर्गीय पात्रों को केंद्र में रखकर लिखने वाले शैलेश मटियानी बिल्कुल आँचलिक कहानीकार हैं। 'सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ,' 'सफर पार करने से पहले', आदि संग्रहों में पहाड़ी क्षेत्र समग्र रूप से उभरा है। स्पष्टतः इन कहानीकारों ने अपने अलग–अलग क्षेत्र के लोग जीवन एवं संस्कृति का चित्रमय संसार अपनी कहानियों में रचा है। इसके अलावा नागार्जुन, देवेन्द्र सत्यार्थी, राजेन्द्र अवस्थी, रामदरश मिश्र, हिमांशु जोशी, विवेकी राय, भगवानदास मोरलवाल आदि रचनाकार अपनी कहानियों में अंचल को एवं अंचल विशेष की लोक संस्कृति को रच रहे हैं। वैसे तो सामाजिक यथार्थ प्रधान कहानियों में भी लोक संस्कृति का समावेश गाहे–बेगाहे होता रहा है, यद्यपि वह रचनाकार के और रचना केंद्र में नहीं रहता, लेकिन आँचलिक कहानियों में चूँकि अँचल विशेष का समूचा वातावरण ही केंद्र में होता है। अतः वहाँ लोक संस्कृति अनिवार्यतः चित्रित होती है। कहानी लेखन की यह धारा(आँचलिक) हिंदी में जब आयी तब से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में बनी हुई है और उसके साथ साथ लोक संस्कृति और हिंदी कहानी की परस्पर संबद्धता भी कायम है।

उपन्यासों के संदर्भ में

हिंदी कथा परम्परा अति प्राचीन है। प्राचीन समय में कथा मौखिक होती थी, धीरे–धीरे वह लिखित रूप लेती है। आधुनिक काल में उपन्यास विधा में

कथा का विस्तार होता है। अंग्रेजों के वर्चस्व के फलस्वरूप मध्यवर्ग का विकास तेजी से होता है और मध्यवर्गीय समूह की आवश्यकताएं, आकांक्षाएं उपन्यास के केंद्र में दिखाई देते हैं। प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यासों में लोक संस्कृ ति के स्वरूप को देख सकते हैं। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास परीक्षा गुरु, भाग्यवती, देवरानी जेठानी की कहानी आदि प्रकाशित हुए सभी उपन्यास शिक्षाप्रद हैं। उस समय जीवन के अनेक क्षेत्रों में आंदोलन चल रहे थे। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह पर बल दिया गया। उस समय के रचनाकारों का मानना है कि शिक्षा के माध्यम से ही देश आजाद हो सकता है। शिक्षा के माध्यम से ही हमारे देश का विकास एवं उन्नत्ति हो सकती है देवरानी जेठानी की कहानी में देवरानी शिक्षित औरत होती है वह सब को एक सूत्र में बांधकर चलती है जबकि अशिक्षित जेठानी में इसका अभाव दिखाई देता है।

प्रेमचंद पूर्व में जितने उपन्यासों का सृजन हुआ उनमें समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है। उस समय नैतिकता का पतन, भ्रष्टाचार, चोरी–डकैती, एक दूसरे को बेवकूफ बनाने उसकी धन पर कब्जा करने या लूट लेना इत्यिादि है। नूतन ब्रह्मचारी और परीक्षा गुरु जैसे उपन्यास में ऐसी समस्याएं देखने को मिलती हैं।प्रेमचंद पूर्व में जितने उपन्यासों का सृजन हुआ वह अपने समाज का यथार्थ चित्रण करते हैं। उस समय नैतिकता का पतन भ्रष्टाचार चोरी डकैती दूसरे को बेवकूफ बनाकर उसके धन पर कब्जा करना या लूट लेना इत्यादि दिखाई देता है और जैसे उपन्यास में ऐसी समस्याएं देखने को मिलती हैं।

देवकीनंदन खत्री के उपन्यास चंद्रकांता की प्रकाशित होने के बाद अनेक युवा वर्ग का हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा। हिंदी कथा साहित्य को पढ़ने की छाबड़ी ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्ण दास आदि लेखकों ने अपने समाज का यथार्थ चित्रण करते हैं। इस युग में अनुदित उपन्यास अधिक मात्रा में प्रकाशित होते हैं।

हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में लोक संस्कृति के तत्व मिलते हैं 'देहाती दुनिया' भोजपुर अंचल की रामशहर गाँव का चित्रण हुआ है। वहाँ के रहन–सहन खान–पान एवं संस्कृति का चित्रण मिलता है। सन् 1936 में प्रकाशित उपन्यास गोदान में लोक संस्कृति के तत्व विद्यमान है हिंदी में उपन्यास लोक और लोक जीवन के जितना करीब होता है वह उतनी ही श्रेष्ठ रचना होती है। गोदान उपन्यास में कृषक जीवन का महाख्यान है जिसमें होरी सिर्फ सेमरी गाँव का प्रतिनिधित्व ही नहीं अपितु वह संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। मानवीय संवेदना का अभाव, होरी से अधिक मात्रा में सूत का वसूल करना, दहेज प्रथा जैसी समस्या का चित्रण किया गया है गोदान को पढ़ने के बाद पाठक वर्ग उसमें अपने आपको प्रत्येक जगह पाता है। भगवानदास मोरलवाल का कहना है कि कोई भी कृति विचारों से महान नहीं बल्कि कथानक से होती है। कथा में जितनी अनुभूति होगी वह उतनी ही महत्वपूर्ण होगी। पहले गाँव में खेतों में काम करने वाली महिलाओं के अपने गीत होते थे लेकिन अब गीत के स्थान पर महिलाएं फोन से बात करती रहती हैं या फोन से ही गीत सुनती रहती हैं लोग संस्कृति के विघटन में अत्यधिक टेक्नोलॉजी का प्रभाव देखा जा सकता है।

जहां प्रेमचंद पूर्व युग में हिंदी उपन्यास का मुख्य लक्ष्य था शिक्षा उपदेश और लोगो का मनोरंजन कराना। प्रेमचंद युग में आदर्शोन्मुख यथार्थ की जमीन तैयार करके समाज की समस्याओं का चित्रण करना इस युग में पहली बार सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक स्थिति का वास्तविक रूप देखने को मिलता है। इस काल में उपन्यास वास्तविक जीवन से जुड़ जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में –गरीब, अमीर, महाजनी सभ्यता, दलित, स्त्री, आडंबर, दहेज प्रथा वेश्याओं की जिंदगी आदि ंसमस्याएं उपन्यास के केंद्र में चित्रित हैं।प्रेमचंद के उपन्यासों में सबसे प्रौढ़ एवं चर्चित उपन्यास है गोदान। इस युग के अन्य उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, चंडी प्रसाद शर्मा, ऋषभ

चरण जैन, उग्र, सियाराम शरण गुप्त आदि हैं जिनके उपन्यासों में लोक संस्कृति का रूप कम मात्रा में देखने को मिलता है।

प्रेमचंदोत्तर युग में लोक संस्कृति का चित्रण करने वाले सबसे बड़े लेखक 'रेणु' हैं, जिनके उपन्यास 'मैला आँचल' को बहुत लोकप्रियता मिली। इस उपन्यास की कथा की बनावट पाठकों के हृदय को स्पर्श करती है। फणीश्वर नाथ रेणु ने कई उपन्यास लिखें हैं– मैला आँचल, परती परिकथा, जुलूस, पलटूबाबू रोड आदि। इन्होंने अपने गाँव के सांस्कृतिक पक्ष को बहुत ही अच्छे ढंग से समझा और अपने पूर्णिया जिले कि रीति–रिवाज, त्योहार, उत्सव, प्रयोजन, लोकगीत, लोक–नित्य, हास्य–व्यंग, लोक–कथाएं, खान–पान, रहन–सहन आदि का वर्णन किया है। 'मैला आँचल' में अंधविश्वास, जादू टोना, आदि का चित्रण मिलता है। यहां के लोगों की यह धारणा थी कि मार्टिन की कोठी में उसकी पत्नी का भूत रहता है। इसलिए गांव वाले उसके पास जाते नहीं थे, जो जाता भी वह वापस नहीं आते । "एक बार ततमा टोली का नंदलाल ईंटे लेने जाता है और जैसे ही वह ईंट छूता है वैसे ही पीछे के जंगल से चुडैल निकल आती है और नंदलाल को सांप के कोड़े से पीटना शुरू करती है और वह वहीं ढेर हो जाता है"[9] लोक संस्कृति में अपने गीत, पर्व त्योहार, लोकनृत्य, हास्य व्यंग, लोक भाषा, खान–पान सभी क्षेत्रों को लेकर अलग–अलग मिलते हैं।

मैला आँचल उपन्यास में उनके अपने क्षेत्र विशेष की कथा है। मेरीगंज की कथा, पंचचक्र की कथा, कमली मैया की कथा, ब्रह्मपिचास की कथा, कोशी मैया की कथा आदि भिन्न–भिन्न कथायें हैं। जो लोक संस्कृति की परिचायक हैं। मेरीगंज का नृत्य जामिलसिंह नाच, बीदापद नाच, ढेढर कंपनी, बिरहा, संथाली, विदेशिया, बलचाही आदि हैं।

बलचनमा (1952) नागार्जुन का महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास है। ग्रामीण जीवन के यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की विशेष उपलब्धि है।

इसके केंद्र में बिहार राज्य का दरभंगा जनपद आता है। नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि दृश्यों को प्रस्तुत किया गया है।

गाँवो में आर्थिक विषमता के फलस्वरूप लोगों की आर्थिक दुर्दशा, जमीदारों द्वारा शोषण,अत्याचार के साथ ही साथ वहाँ की रीति रिवाज, परंपराएं, देखी जा सकती हैं। "नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जिस समाज का चित्रण किया है, वह उनका अच्छी तरह देखा – भाला है और उसी समाज में रहते हुए स्वयं ने भी उस दुख – दर्द को झेला और भोगा है।"[10]

'बलचनमा' दरभंगा जिले के रामपुर नामक गाँव का रहने वाला है। उसके परिवार में माता–पिता दादी छोटी बहन है। इसी को आधार बनाकर गरीब किसान की आर्थिक स्थिति का वर्णन किया गया है। आर्थिक तंगी के कारण अत्याचार होते हुए भी उनके घर का काम या खुशामद करना पड़ता है। बलचनमा एक गरीब भूखा लड़का था। उसे आम खाने पर मालिक नौकरों से पिटवाता है पिता की मृत्यु के बाद इन लोगों के पास उनके संस्कार करने के लिए पैसे नहीं थे । मझले मालिक (जमीदार) से 12 रुपये सूद पर पैसे लेती है इसी कर्ज को भरने में लोग बहुत सारा पैसा दिए लेकिन मालिक का कहना था कि यह तो सूद भरा गया है मूल अभी बाकी है। यह जमीदार खूब सारा काम भी करवाता था। खाने को बचा हुआ खाना देता है, जमीदार लोग गाँव में गरीब किसान और मजदूरों से बहुत सारा काम करवाते हैं लेकिन मजदूरी बहुत कम देते हैं। उनकी मजबूरी का फायदा उठाते हैं। पिता के मृत्यु के बाद बलचनमा की दादी काम के लिए छोटी मालकिन के पास जाती हैं उनका पैर पकड़ कर रोने लगती हैं। कहती हैं– "नहीं मालिकाईन ऐसी बात न कहिए प्रणाम मेरा बालचंन मुट्ठी भर से अधिक भात नहीं खाता। कोदो, महुआ, मकई, सॉवा, कॉवन, चाहे जिसकी भी रोटी दे दो, खुशी–खुशी खा लेगा और दो चुल्लू पानी पीकर संतोष की साँस लेता उठ जाएगा, बड़ा ही सुभर है, तनिक

भी नहीं खेलता, मलिकाईन।"[11] इस उपन्यास में ऊँच–नीच का भेद भी देखने को मिलता है। गरीब या छोटे जाति से अपना सारा काम करवाते हैं लेकिन सामने बैठने नहीं देते, उन्हें खाना नहीं खिलाते। ग्रामीण संस्कृति में झाड़–फूंक चलता है। उच्च वर्ण के लोग वैश्य, शूद्र के यहाँ नहीं जाना चाहते। जो झाड़ फूंक करने वाले उच्च जाति के हैं वह भी निम्न जाति में नहीं जाते हैं। यह उपन्यास दरभंगा की ग्रामीण संस्कृति एवं छुआछूत तथा किसानों की बुरी स्थिति को प्रस्तुत करने में सफल रहा है। नागार्जुन ने कई उपन्यास लिखें उनमें लोक संस्कृति की छाप दिखाई देती है। गाँव में देवी देवता को पेड़ के अंदर भूत या भूताहवा घर इत्यादि नाम से जानते हैं।

नागार्जुन के बाद कई उपन्यासकार आते हैं जिन्होंने लोक संस्कृति, ग्रामीण संस्कृति पर उपन्यास लिखते हैं। शिवप्रसाद सिंह का 'बहती गंगा'(1952), देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए' (1953) उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' (1995) रेणु कृत 'परती परिकथा', राजेन्द्र अवस्थी कृ त 'जंगल के फूल' राही मासूम रज़ा कृत 'आधा गाँव', शैलेश मटीयानी, शानी आदि ऐसे उपन्यासकार हैं जिसमें आंचलिकता एवं ग्रामीण संस्कृति का स्वरूप दिखाई देता है। सन् 1960 के बाद अनेक उपन्यास आए जिसका संबंध कहीं न कहीं लोक संस्कृति के बनते बिगड़ते स्वरूप को दिखाया है। मनुष्य गाँव से शहर को पलायन होने के लिए बाध्य है उसकी मजबूरी होती है। कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं– शिवप्रसाद सिंह का अलग–अलग बैतरणी (1967),श्रीलाल शुक्ल कृत राग दरबारी (1968), रामदरस मिश्र कृत जल टूटता हुआ (1969),जगदीश चन्द्र कृत 'धरती धन न अपना'(1972), विवेकी राय कृत लोकऋण, सोनामाटी, कृष्णसोबती कृत जिंदगीनामा, मणिमधुकर का पिंजरे में पन्ना (1981), अब्दुल बिस्मिल्लाह कृत झीनी झीनी बीनी चड़ारिया (1986), संजीव कृत धार (1990), वीरेंद्र जैन कृत डूब, रामदरश मिश्र कृत बीस बरस (1996), भगवान दास मोरलवाल कृत काला पहाड़ (1999), मैत्रेयी पुष्पा कृत

अल्मा कबूतरी (2000),मिथिलेश्वर कृत 'यह अंत नहीं', हरी राम मीणा कृत 'धूणी तपे तीर', रणेंद्र कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता' महुआ मॉझी कृत 'मरंग घोड़ा नीलकंठ हुआ'(2012) आदि महत्वपर्ण उपन्यास है।

कुछ उपन्यासों का विस्तृत वर्णन किया है और कुछ किया भी जाएगा जिससे कि लोक संस्कृति की परम्परा को स्पष्ट किया जा सके। श्री लाल शुक्ल का रागदरबारी उपन्यास स्वतंत्रता के पश्चात समस्याओं का ठीक ठीक चित्र प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में गाँव के विकास में अवरोधक तत्व की पड़ताल की गई है। जो गाँव को प्रगति होने से रोक रहा है। नेता, शासक प्रशासक भ्रष्टाचार एवं घूसखोरी का चित्र खोलता यह उपन्यास समाज के यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है। वाहन चेकिंग करते समय अफसर का यह कहना कि "कहां तक चालान कीजिएगा। एकाध गड़बड़ी हो तो चालान भी करें। दूसरे सिपाही ने कहा– चार्जशीट भरते भरते सुबह हो जाएगा।"[12]

राग दरबारी में वर्तमान शिक्षा पद्धति के खोखलापन का चित्र प्रस्तुत हुआ है। शिवपाल गंज में इंटर कॉलेज स्कूल है, जिसमें शिक्षकों का अभाव है उसमें जो कर्मचारी थे वह अपने घर काम करने के लिए चले जाते थे। स्कूल में दुराचार फैला हुआ था, अनैतिक कार्य हो रहे थे। गाँव का विकास तभी हो सकता है जब गाँव में अच्छी शिक्षा व्यवस्था हो, शासन–प्रशासन अच्छा हो, रोजगार की व्यवस्था हो तो गाँव का विकास स्वाभाविक रूप से हो जाएगा। लोग ग्रामीण परिवेश में रहने वाले लोगों को हीन एवं उनकी भाषा को गिरी एवं पिछड़ी हुई भाषा के रूप संबोधित करते हैं।

'आधा गाँव' उपन्यास राही मासूम रज़ा का एक महत्वपूर्ण आँचलिक उपन्यास है, यह उपन्यास पूर्वी उत्तर प्रदेश के गांगौली(गाजीपुर) के शिया मुसलमानों के जीवन पर आधारित है। मोहर्रम त्योहार अपना अलग अलग महत्व रखता है। इस उपन्यास में राही मासूम रज़ा लिखते हैं "कुछ दसकों के अंतराल में फैले हुए समय की गति को केंद्रीय विषय बनाया है। यह कहानी

गंगौली में गुजरने वाले समय की कहानी है।"[13] यह उपन्यास अनैतिक संबंधों से भरा हुआ है।

मणि मधुकर का उपन्यास 'पिंजरे में पन्ना' में राजस्थान के लोकजीवन एवं लोककला का चित्रण किया गया है। राजस्थान में यायावर जीवन जीने वाले गाड़िया लुहार और ख्याल कलाकारों का वर्णन किया गया है। इनकी अपनी लोक संस्कृति, कला, संगीत है। 'पिंजरे में पन्ना' में लोक संस्कृति के विविध रूप दिखाई देते हैं, यहां के लोगों में रीति रिवाज एवं परंपरा के प्रति गहरी आस्था एवं श्रद्धा भाव है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के बाद पूजा पाठ करते हैं "जब डेरा उखड़ता है तो पहले पड़ाव पर शस्तर धाए – मॉजे जाते हैं उन पर रोली लगाई जाती है।"[14] इनका खान पान एवं पहनावा एकदम साधारण है, कपड़े ढीले और अरामदेय होते हैं। बाजरे की रोटी, सांगरी का अचार, लहसुन की चटनी आदि का भोजन करते हैं। यहाँ के लोगों में लोक कथाओं के प्रति अटूट विश्वास है राजस्थान में ख्याल लोकनाट्य लोक जीवन में बहुत लोक प्रिय हैं। यहाँ के लोग लोकनाट्य से रागात्मक संबंध रखते हैं, लोग प्राकृतिक जीवन यापन करते हैं और लोक जीवन में स्वाभाविकता पन पाया जाता है। निम्न वर्गों में अनेक प्रथाएं एवं परम्पराएं पायी जाती हैं। गांवो में सहयोग की भावना अत्यधिक होती है, पुरुष और नारी मिलकर सभी काम करते हैं और अपने में रागात्मक सम्बन्ध रखते हैं।

'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने बुंदेलखंड के जीवन का चित्रण किया है। वहाँ की संस्कृति एवं वहाँ के खदान में मजदूरों की त्रासद स्थिति का चित्रण मिलता है। 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में संजीव झरिया अंचल चंदनपुर कोयला खदान में काम करने वाले मजदूरों एवं उनके गीत, पर्व, त्योहार, दुख – सुख, जीवन यापन की कठिनाइयों का वर्णन किया है। इस उपन्यास के संदर्भ में गोपाल राय का कहना है "सावधान! नीचे आग है' में झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केंद्र में रखकर कोयला

माफियाओं, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का अंकन किया गया है।"[15] कोयले के खान में काम करती महिलाएं अपने गीत गाया करती थी। ये गीत उनके दुख दर्द एवं खुशी और उल्लास के होते हैं और कुछ गीतों में बस उनके दुख दर्द ही बयां होते हैं। राजस्थान से जो मजदूरनी काम करने आई थी उसके वस्त्र एवं खान पान अलग थे। उनके वस्त्र घुटनों तक झूलते घाघरे , कुर्ती , पांवों में मोटे छड़े, हाथ में कड़ा पहना करती थी। सभी मजदूर किसी खास त्योहार पर अच्छे वस्त्र धारण करते थे। झरिया के लोकगीत, रूढ़ि परम्परा , लोक विश्वास, खान – पान, रहन – सहन, पर्व, त्योहार यह लोक संस्कृति की परिचायक हैं।

'जिंदगीनामा' उपन्यास कृष्णा सोबती का एक महत्वूर्ण उपन्यास है जिसमें लोक के गीत, लोक भाषा, अंधविश्वास आदि के माध्यम से लोक संस्कृ ति एवं लोक जीवन को दिखाया गया है। इस उपन्यास में लोहड़ी उत्सव का आयोजन किया गया है। तथा फागू के गीत भी गाए जाते हैं–

"फागुन फूले खेत ज्यों बन तन फूल श्रृंगार
होर डाली फुल्ल फात्तियां गल फूलन के हार"[16]

भूत को भगाने का गीत भी गाया गया है। इस उपन्यास में दर्द के गीत और शुभवचन के गीत गाए गए हैं यह लोक संस्कृति के प्रतीक हैं।

हिंदी साहित्य में कई उपन्यासकार हैं जिन्होंने लोक संस्कृति पर काम किए और लोक संस्कृति का कथा साहित्य के माध्यम से चित्रण किए करते हैं। मिथिलेश्वर एक ऐसे ही कथाकार हैं जिन्होंने अपनी मातृ भाषा भोजपुरी एवं यहाँ की संस्कृति को अपने उपन्यास के केंद्र में रखे हैं। 'माटी कहे कुम्हार से' में बिहार के भोजपुर के विवाह के समय गीत गाए जाने का वर्णन है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पांडेय, डॉ अष्टभुजा प्रसाद, हिन्दी कहानी, शिल्प, इतिहास, आलोचना, लक्ष्मण प्रसाद शर्मा, हिन्दी प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ – 33

2. लाल, लक्ष्मीनारयण, हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि, विकास साहित्य भवन प्रावलीव, जीरो रोड इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ – 18

3. तिवारी, रामचंद्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी,संस्करण 2016, पृष्ठ – 365

4. लाल, डॉ लक्ष्मीनारायण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2001, पृष्ठ – 18

5. तिवारी, रामचंद्र, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2016, पृष्ठ – 372

6. अवस्थी,(सं॰) राजेन्द्र, : सत्रह आंचलिक कहानियॉ, पृष्ठ – 6

7. वही, पृष्ठ – 6

8. रेणु, फणीश्वरनाथ, मैला ऑचल भूमिका से,

9. रेणु, फणीश्वरनाथ, मैला ऑचल, पृष्ठ – 5

10. सत्यनारायण, नागार्जुन, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 1991, पृष्ठ– 71

11. नागार्जुन, बलचनमा, किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ – 4

12. शुक्ल, श्रीलाल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ –9

13. जिलानी, डॉ दिलशाद, आधा गॉव : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ–11

14. मणि मधुकर, पिंजरे में पन्ना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–53

15. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–375

16. सोबती, कृष्णा, जिंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–90

तृतीय अध्याय
कथा और लोक संस्कृति : काशीनाथ सिंह के उपन्यास

तृतीय अध्याय
कथा और लोक संस्कृति : काशीनाथ सिंह के उपन्यास

1.विश्वविद्यालयी छात्र आंदोलन और अपना मोर्चा

काशीनाथ सिंह का पहला उपन्यास अपना मोर्चा सन् 1972 में आया। यह एक लघु उपन्यास है, जिसमें तत्कालीन सामाजिक संदर्भों को बखूबी उकेरा गया है। आजादी के बाद हमारे सपने टूट गए और नियम, कानून, न्याय व्यवस्था, आम आदमी की स्थिति दयनीय होती जा रही है। विश्वविद्यालय शिक्षा और न्याय सब राजनीति के शिकंजे में है।

1967 में भाषा विधेयक के विरोध में उपजे छात्र आंदोलन के साथ आम जनता की मूलभूत समस्या शिक्षा, कानून, राजनीति को उपन्यास के कथानक का आधार बनाया गया है। 1967 के भाषा विधेयक आंदोलन को काशीनाथ सिंह ने प्रत्यक्ष रूप में देखा है और उसे उसी रूप में प्रस्तुत भी किया है। वह विश्वविद्यालयी भ्रष्टाचार, कानून व्यवस्था, घूसखोरी, न्याय व्यवस्था के प्रति क्षोभ प्रकट करते हैं। अपना मोर्चा के बारे में जगदीश नारायण लिखते हैं कि "अपना मोर्चा अब तक लिखे गए हिंदी उपन्यासों में पहला उपन्यास है जो अपने समय की युवा पीढ़ी के क्रोध को सच्ची और प्रखर अभिव्यक्ति देता है। काशीनाथ सिंह इस उपन्यास के माध्यम से देश की सारी गजालत को उसकी जटिलताओं और कारणों के साथ बेबाक ढंग से पाठक के सामने प्रकट कर देते हैं ताकि वह उस दृढ़ता से सोचे और उन्हें बदल देने की राहों पर संगठित होकर चल निकले स"[1] अपना मोर्चा उपन्यास जहाँ से प्रारंभ होता है वहीं पर खत्म भी होता है। लेखक आट्र्स फैकल्टी के तीसरे तल पर खड़ा होकर पीएससी के जवानों को देख रहा है। इसके बाद बीच में छात्र आंदोलन, लाठीचार्ज, ज्वान की दृष्टि से गरीब, किसान, छात्र, अध्यापक, प्रशासन,

विश्वविद्यालय को देखता है और कथानक का अंत भी छत के ऊपर पुलिस आकर कथाकार से अजीब ढंग का व्यवहार करती है। उसके बताने के बावजूद कि मैं प्रोफेसर हूँ, यहां पर पढ़ाता हूँ लेकिन पुलिसवाला उसे पैर से इनको मार देता है। इस पर कथाकार क्षोभ प्रकट करने के अलावा कुछ कर न सका। तब फ़िक्र यह कि जब ऐसी स्थिति प्रोफेसर की है तो छात्रों की स्थिति क्या होगी।

काशीनाथ सिंह वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के प्रति क्षोभ व्यक्त करते हैं। 'अपना मोर्चा' के मूल में 'भाषा विधेयक' विषयक विरोध, छात्र आंदोलन और विश्वविद्यालय जीवन है। लेखक का मानना है कि हमारे देश में संविधान है और "यह संविधान कहता है कि तुम जो चाहो खा सकते हो, जो चाहो पहन सकते हो, जैसे चाहो रह सकते हो लेकिन हमें इसमें से कुछ भी करने की छूट नहीं है।"[2] छात्र जब शांतिपूर्वक अपना जुलूस निकालते हैं तो उन्हें प्रशासन अपने मोर्चे पर ले जाकर लाठीचार्ज कर देती है। इससे यह पता चलता है कि तुम छात्र हो तुम्हें सरकार के विरोध में नहीं बोलने दिया जाएगा, अगर बोलोगे तो मारे जाओगे। ऐसे ही घटना हाल ही में जेएनयू में घटित हुई। वहां के छात्र कुछ मांगों को लेकर धरने पर बैठे थे। विश्वविद्यालय प्रशासन से उसका जवाब चाहते थे। जब विश्वविद्यालय प्रशासन ने उनकी नहीं सुनी तो उन्होंने संसद मार्ग पर मार्च और नारे के माध्यम से अपना संघर्ष तेज़ किया, लेकिन सरकार ने उन पर लाठीचार्ज करवा दिया।

'अपना मोर्चा' उपन्यास के छात्र सिर्फ भाषा का ही आंदोलन नहीं करते, अपितु उनका आंदोलन छात्र जीवन में घटित होने वाली विभिन्न समस्याओं को अपने में समेटे हुए है। वह छात्र जीवन में घटित होने वाली विभिन्न समस्याओं जैसे पाठ्यक्रम की नवीनता की समस्या, पाठ्यचर्या और उसके सामाजिक राजनीतिक संबंध, छात्र शिक्षक संबंध आदि को लेकर मन ही मन परेशान रहते हैं, लेकिन कुछ उचित समय के इंतज़ार में थे। जैसे ही भाषा विधेयक विषयक

विरोध जोर पकड़ता है सभी छात्र तैयार हो जाते हैं। छात्र विश्वविद्यालय में आए हैं अध्ययन करने के लिए लेकिन उनका मन नहीं लगता क्योंकि उसे " भारतीय युवा को वह पढ़ाया जाता है जो वो नहीं पढ़ना चाहता क्योंकि अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद के तांत्रिक अंतर या समीक्षा के मानदंडों पर... वह 20 साल से किताबें पढ़ रहा है अनुशासन में रह रहा है, ऐसी किसी चीज की उम्मीद नहीं है जो उसके जीवन को सार्थक एवं उपयोगी बना सके।"[3] ये छात्र चाहते हैं कि हमें हमारे समाज के बारे में, उनके इतिहास के बारे में, बेहतर जीवन जीने के तरीके के बारे में पढ़ाया जाना चाहिए जो नहीं पढ़ाया जाता।

काशीनाथ सिंह छात्रों को पढ़ने के विषय में ज्वान से कहलाते हैं कि "तो राजू पढ़ रहे हो पढ़ो। लेकिन अपने आसपास के, आगे पीछे के लोगों को गौर से देखो। इस तरह कि उनके साथ ही उनका परिवार आंगन बखार और चूल्हा और थाली सब दिखाई पड़ जाए। उनकी गंजी में कितना मारकीन है और कितना मैल है, घर की औरतों के तन पर कितना प्याला है और कितनी साड़ी, सब नजर आ जाए। अगर अपनी आंखों में यह क्षमता पैदा कर सको तो पढ़ाई का मतलब है, नहीं तो सब हिंदुस्तान है।"[4] तात्पर्य यह कि हम पढ़ रहे हैं तो हमारा दृष्टिकोण समाज के प्रति खुला होना चाहिए। हम समाज और लोगों के विषय में जान सकें कि समाज और उसमें रहने वाले लोगों की जैसी स्थिति–परिस्थिति है, वैसी क्यों है ? ज्वान एक ऐसा पात्र है जो शिक्षक, छात्र और विश्वविद्यालय प्रत्येक जगह मिलता है। उसे ऐसे पढ़े लिखे लोगों से भी क्षोभ रहता है, जिनकी संवेदनाएं आज मरती जा रही हैं। वे जिन्हें अपने घर, परिवार, गाँव में जाकर लोगों से बात करने में अपनी हेठी महसूस होती है। आखिर ये कैसी शिक्षा ग्रहण करते हैं कि इनमें इतना परिवर्तन आ जाता है ? वह अपनों के बीच नहीं बैठना चाहते, न ही बैठाना चाहते हैं। वह शिक्षित युवाओं को संबोधित करते हुए कहता है कि "मैं मैंले कुचैले कपड़ों में तुम्हारे

बगल से गुजरता हूं और तुम अपनी नाक पर रूमाल रख लेते हो, मैं रेल के डिब्बे में घुसना चाहता हूं और तुम मेरे लिए दरवाजा बंद कर देते हो, मैं तुम्हारी बगल में थोड़ी सी जगह मांगता हूं और तुम बर्थ के नीचे का फर्श दिखा देते हो।"[5] तात्पर्य यह है कि आज हम शिक्षा तो अर्जित कर रहे हैं लेकिन अपनी धरती, अपने गाँव, परिवार और आमजन की गरीबी व पीड़ा को अलग छोड़ते जा रहे हैं। यह विघटित होती लोकसंस्कृति के टूटने और उस पर शहरी संस्कृति के हावी होते जाने का दुखद पहलू है। पहले लोग ज्ञानार्जन या विद्या अध्ययन करते थे तो उनमें मानवीय संवेदनाएं होती थी। वे अपनों से, जहां से उठे थे उन्हें कभी भूलते नहीं थे, न ही घृणा करते थे लेकिन आज के छात्र या शिक्षित युवा वर्ग अपनों से, अपनी ज़मीन, अपने मूल से घृणा करने लग रहे हैं । यह सभ्यता का विकृत विकास है या यूं कहें विकास का विकृत रूप और अमानवीय पक्ष है। स्पष्टतः शिक्षा व्यवस्था में अगर बदलाव हो तो अधिकांश समस्याओं का निराकरण हो सकता है। ज्वान छात्रों की असंवेदनशीलता और अमानवीयता के एक और स्तर की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करता है। ज्वान की नजर में "वह बेईमान खुदगर्ज और संवेदना शून्य होता जाता है। रिक्शे वालों को बगैर पैसे दिए वह छात्रावास के अपने कमरे में चला जाता है। जिस दुकान में वह चाय पीता है पैसे मांगने पर उस दुकान के दुकानदार को गालियां देता है। वह गरीब की हत्या कर डालता है और जश्न मनाता है।"[6]

विश्वविद्यालय में छात्र अध्ययन करने आते हैं वे बहुत खुश होते हैं कि यहां उच्च स्तरीय शिक्षा मिलेगी एवं हम सफल व्यक्ति बनकर निकलेंगे। इसके अलावा और भी बहुत सपने होते हैं जो समय के साथ टूटते नजर आते हैं। कारण यह है कि जो छात्र जी तोड़ मेहनत करते हैं, जो पढ़ने लिखने में बेहतर हैं, जिन्हें शीर्ष पर रहना चाहिए, वह देखते हैं कि उनकी जगह जिस छात्र की किसी शिक्षक से, अधिकारी से पकड़ है या वह किसी शिक्षक या

अधिकारी, कर्मचारी के बेटे बेटी हैं या जो छात्र विश्वविद्यालय में केवल राजनीति करने आते हैं और उनकी राजनीतिक पैठ है तो उसके अंक सबसे ज्यादा रहते हैं भले ही वह पढ़ने लिखने में बहुत कमजोर हो।

अपना मोर्चा उपन्यास के केंद्र में छात्र आंदोलन एवं विश्वविद्यालयी भ्रष्टाचार ही दिखाई देता है। कोई भी आंदोलन हो उसमें अलग–अलग रूप में आवाज उठाएंगे तो कुचल दिए जाएंगे, मारे जाएंगे। इसलिए यह मोर्चा "मध्यवर्गीय तबके क्लर्कों शिक्षकों तथा अन्य बुद्धजीवीयों किसानों और मजदूरों का मिला जुला संयुक्त मोर्चा है।"[7]

अपना मोर्चा में छात्र जिस समय आंदोलन कर रहे थे, उस समय उनके साथ कोई नहीं था। उनके पास अनुभव की बहुत कमी थी, वे शांतिपूर्वक अपना विरोध जता रहे थे, उसी समय पुलिस लाठीचार्ज कर देती है। कथाकार उस आंदोलन को दूर से ही, सब कुछ प्रत्यक्ष रूप देख रहा था। वहां छात्रों को बेरहमी से पीटा गया, उन्हें ऐसे मारा जा रहा था जैसे जान ही लेने पर उतारू हो गए हों। वे कैसे भी निकल कर भागे और किसी की शरण लेनी चाही तो वे उन छात्रों को पुलिस के सामने ऐसे फेंकते हैं जैसे रोटी को कुत्तों के सामने फेंका जाता है। इससे ज्वान बहुत आहत होता है और कहता है कि जो लोग बगल से चल रहे हैं और उस आंदोलन को देख रहे हैं उन सबको शामिल होना चाहिए। लेकिन दूसरी तरफ स्थिति यह है कि प्रोफेसर टूर पर जाने की योजना बना रहे हैं। कथाकार बहुत आहत होता है और कहता है कि आखिर "तुम यह कैसी बात कर रहे हो किताब के कीड़ों। आखिर आंखें खोल कर तो देखो तो सही देखने की कोशिश तो करो कि यहां कैंपस में, शहर में, देश में क्या हो रहा है।"[8] प्रोफेसरान को देश और समाज की चिंता नहीं है। वह सिर्फ अपने में मस्त और खुश रहना चाहते हैं, वह विदेश घूमना चाहते हैं,अपने लिए प्लाट खरीदना चाहते हैं, विंडमफाल जाना चाहते हैं। उन्हें उस भाषा विधेयक आंदोलन से कोई मतलब नहीं है, छात्र पीटे

गए उससे कोई लेना देना नहीं। ये वही छात्र हैं जो प्रोफेसर को कोई समस्या होती है तो सबसे पहले पहुँचते हैं लेकिन प्रोफेसर धन और सुखी जीवन में लिप्त रहना चाहते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही यह राजनीति, भ्रष्टाचार एवं धांधली नहीं हो रही बल्कि ऐसे कई विश्वविद्यालय हैं जहाँ पर ये सब कुछ चल रहा है। "धांधलियाँ विश्वविद्यालय का चरित्र हैं।"[9] यहाँ पर कुछ ऐसे छात्र हैं जो आर्थिक और सामाजिक रूप से संपन्न घराने से हैं लेकिन 'छात्र सहायता कोष' का फार्म भरकर पैसे उठाते हैं। जो हकदार हैं उन्हें नहीं मिलता, जो हकदार नहीं हैं वे धांधली करके ले लेते हैं। "नियुक्तियों में धांधलियाँ हो रही हैं, परीक्षा में बेमानियाँ हो रही हैं, अधिकारी तानाशाह हो गये हैं, क्लर्कों का मन बढ़ गया है, चपरासी सुन नहीं रहे हैं, अपना संघ बना रहे हैं... लड़के बेचैन हैं और इधर उधर भटक रहे हैं।"[10]

कथाकार और ज्वान के बीच में शिक्षा व्यवस्था एवं समाज के कई मुद्दों पर बात होती रहती है। बात होती है रोजगार पर, आरक्षण पर, गरीबी अमीरी पर, बच्चों के पढ़ने की व्यवस्था को लेकर। लाइब्रेरी में इतनी पुस्तकें हैं लोग पढ़कर समझदार एवं रोजगार पा सकते हैं लेकिन ऐसा नहीं होता क्यों? जवान कहता है "एक बात जरूर कहूंगा पढ़ो जरूर पढ़ो किताबे नहीं, आदमी। किताबें भी पढ़ो लेकिन यह देखते हुए कि वे दुनिया और आदमी को समझने में कितनी मदद देती है।"[11] छात्र जब पढ़ते रहते हैं और अपने समाज को देखते हैं तो उनके मन में प्रश्न बार–बार उठता है कि कुछ लोग इतने अमीर और कुछ लोग बहुत गरीब क्यों हैं, इनकी स्थिति क्यों बिगड़ती जा रही है, वह अपनी समस्या सरकार के सामने क्यों नहीं रख पाते ? यही सब आक्रोश भाषा विधेयक आंदोलन के रूप में निकलता है। अतः"उपन्यासकार इस छात्र आंदोलन को व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़कर देखता है। अपना मोर्चा का

भाषा विधेयक विरोध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बुनियादी संवैधानिक अधिकार की रक्षा का प्रश्न बन जाता है"[12]

भाषा विधेयक आंदोलन के दौरान पुलिस द्वारा छात्रों का हिंसक रूप से पीटे जाना इन्हें आगाह कर देता है। वे यह सोचने पर मजबूर होते हैं कि अब क्या करें, कौन इस आंदोलन की अगुवाई करेगा? इसी उधेड़बुन में सभी एक जगह बैठे थे, उसी समूह में से एक गरीब छात्र उठता है और कहता है कि भाइयों हमारे ऊपर भरोसा कीजिए। वह कहता है कि हमें आंदोलन से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि हमारी लड़ाई किस बात की है। "भाषा का अर्थ जीने की पद्धति, जीने का ढंग। भाषा यानी जनतंत्र की भाषा, जनतांत्रिक अधिकारों की भाषा, आजादी और सुखी जिंदगी के हक की भाषा। हम जीने के इस तौर तरीके के लिए लड़ रहे हैं।"[13]

छात्रों का भाषा विधेयक आंदोलन जब पहली बार हुआ था तो उसे रौंद दिया गया था। दूसरी बार छात्रों ने मजदूर, किसान, मेहतरों के सहयोग से पुलिसवालों को मात दी। आंदोलन की सफलता की समीक्षा स्वरूप यही बात ज्वान आंदोलनकारियों को समझाते हुए कहता है कि "एक बात तुम्हें हमेशा याद रखनी चाहिए कि वह अकेले तुम्हारी लड़ाई नहीं थी। उसमें मेहतर भी थे, उनकी औरतें भी थीं, लड़कियां भी थीं, सुंदरपुर के ग्वाले और किसान भी थे।.. . अपने साथ उन्हें भी लो जो तुम्हारी जमीन हैं, जिस पर तुम खड़े हो जो तुम्हें शक्ति, साहस और समझ देते हैं।"[14]

ज्वान कहता है ऐसा सवाल उठाओ जो मात्र हमारा ना हो "वह तुम्हारे भाई से भी जुड़ा हो, चाचा से भी, पिता से भी, जो तुम्हारे मन और शरीर की भीतरी पीड़ा से भी परिचित हो।"[15] जब सभी लोग एकजुट होकर आंदोलन या विरोध करेंगे तो सत्ता कुछ नहीं कर पाएगी और अंततः हमारी बात को मानना पड़ेगा। अगर ऐसा नहीं होगा, हमारी लड़ाई, हमारे संघर्ष का दायरा सीमित व संकुचित होगा, हमारी पीड़ा और हमारे सपने साझा नहीं होंगे तो छात्र

आंदोलन करेंगे तो अध्यापक घूमने को सोचेंगे, जब अध्यापक करेंगे तब छात्र देखेंगे, जब किसान करेंगे तब हँसेंगे। अतः सबको एकजुट होना होगा। जब सभी एकजुट होंगे तभी सत्ता हमारी समस्या को समझेगी और सुलझाने का प्रयास करेगी। इस प्रकार 'अपना मोर्चा' छात्र आंदोलन की पृषठभूमि में जनहित की व्यापक समस्या से संबद्ध जनांदोलन का गहरा विमर्श भी प्रस्तुत करता है।

अंततः निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि अपने छोटे कलेवर में सिमटा हुआ छात्र आंदोलन पर केन्द्रित उपन्यास 'अपना मोर्चा' विश्वविद्यालयी भ्रष्टाचार, छात्र राजनीति, ह्रासोन्मुख शैक्षणिक संस्कृति, पुलिस की तानाशाही, शिक्षकों का शिक्षा के प्रति उपेक्षित रवैया और राजनीतिक पैठ में अत्यधिक दिलचस्पी इत्यादि विश्वविद्यालय जीवन की विविध समस्याओं को समेटे हुए है। इसके साथ ही आरक्षण, बेरोजगारी, भ्रष्ट शासन तंत्र, घूसखोरी और शिक्षित युवा की अपने समाज एवं संस्कृति के प्रति अपेक्षा भाव संबंधी कई अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर भी हमारा ध्यान केंद्रित करता है।

2– 'भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति का द्वंद्व और काशी का अस्सी'

काशीनाथ सिंह का चर्चित एवं प्रसिद्ध उपन्यास 'काशी का अस्सी' 2002 में आया। यह उपन्यास इनकी ख्याति का आधार है, इनको एक बड़े लेखक के रूप में प्रसिद्धि दिलाने वाली रचना भी है। तथा यह भाषा को लेकर बहुत विवादित भी रहे हैं। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप मध्यवर्गीय जीवन एवं आम जनमानस पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा जा सकता है। लेखक कहते हैं कि 'काशी का अस्सी मेरा शहर है तो रेहन पर रग्घू मेरा गाँव'। शहर में ग्लोबलाइज़ेशन का प्रभाव के रूप में काशी का अस्सी उपन्यास को विशेष रूप से देखा जा सकता है जबकि रेहन पर रग्घू उपन्यास में ग्लोबलाइजेशन के प्रभाव ग्रामीण क्षेत्र में देखा गया। 1992 के बाद बाजारीकरण पूरी दुनिया पर

हावी हो गया है। काशीनाथ सिंह कहते हैं "सोवियत संघ के विघटन के बाद अब अमेरिका ही रह गया है। दूसरी और तीसरी दुनिया अब है ही नहीं। जो कुछ है वह अमेरिका है। वहीं तमाम देशों की शासन विधि तक तय कर रहा है। बाजारीकरण का मूलमंत्र ही यही है कि इतिहास का अंत और विचारों का अंत। इसका सीधा असर हमारे साहित्य पर दिख रहा है। मुझे महसूस होता है कि नई पीढ़ी के लेखकों की दृष्टि में पूँजी ही विचार है। उनके लिए व्यवसाय और विचार में कोई अंतर नहीं रह गया है।"[16]

'काशी का अस्सी' उपन्यास पर डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी के निर्देशन में मोहल्ला अस्सी फिल्म बनी जिसे काफी सराहना मिली है। इस उपन्यास में काशी में पप्पू की चाय की दुकान पर बैठकर बौद्धिक विमर्श होते रहते हैं उसमें आमजन भी शामिल रहते हैं। शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय, राजनीति, बाबरी मस्जिद विध्वंस, सरकार,शाशन प्रशाशन पर विशेष रूप से विचार विमर्श होता रहता है। पूँजीवाद का बढ़ते प्रभाव के कारण आमजन के जीवनी स्थिति में बहुत प्रभाव पड़ा। सोहनलाल शर्मा लिखते हैं "इस जीवन प्रणति की विशेषता यह है कि बदलाव की इच्छा के बावजूद उच्च और निम्न मध्यवर्ग का एक बड़ा तबका वर्गगत विचारों, संस्कारों और प्रवृत्तियों से प्रायः मुक्त नहीं हो पाया है। राज्य मशीनरी के सभी अंगो का संरक्षण शोषण वर्ग को प्राप्त है तथा शोषण की तीव्रता ने व्यापक असंतोष को जन्म दिया है।"[17]

पूंजीवाद के कारण आम जनजीवन में व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है एवं इससे हमारे लोक संस्कृति में परिवर्तन भी देखने को मिलता है। लोग एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने लगे, काशी के घाट पर अधिकांश लोग दूर–दूर से आए और अधिक पैसे देकर वहां की जमीन और मकान को खरीद लिए। यहाँ एक मिश्रित संस्कृति हो गई है। इसी कारण से लोक संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति संस्कृति हावी हो गई। काशी का अस्सी के माध्यम से राजनीतिक चेतना के साथ–साथ कर्मकांड, पूजा–पाठ, धार्मिक रूढ़ियों में भी

काफी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। काशी के जो सबसे बड़े धर्मनाथ पांडे थे, वह धर्म एवं कर्मकांड, पूजा पाठ आदि को लेकर बहुत ज्यादा कट्टर थे लेकिन बाजारवाद के हावी होते ही इन्हें अपने नियम, सिद्धांत में बदलाव करना पड़ा। शिक्षा, व्यवस्था, कपड़े, रोटी, मकान आदि जरूरत की सामग्री महंगी हो गई। वह अंग्रेजों को मलेच्छ कहते थे, उन्हें अपने घर में नहीं, मोहल्ले में नहीं आने देते थे। वहां रूम नहीं देते थे जो लोग अंग्रेजों को या बाहरी किसी व्यक्ति को अपने मकान में रखते, उससे इनके धर्म भ्रष्ट होती थी। उन्होंने अर्थ के अभाव को देखते हुए अपने विचारों में परिवर्तन लाया। एक अंग्रेज को अपने घर में रखे, जिससे उनके जीवन में अर्थ के कुछ स्रोत हो सके। हम बाजार में जीने लगे, हम पैसे पर आधारित हो गए। पहले हम अपनी सामग्री के दाम तय करते थे लेकिन अब बाजार तय करता है कि यह वस्तु का कीमत क्या होगा।

'काशी का अस्सी' उपन्यास में आम आदमी का चित्रण मिलता है। यह उपन्यास भाषा, शैली, कथानक, पात्र आदि को ध्यान में रखकर लिखा गया है। बनारस में गुरु शब्द सबके लिए किया जाता है। भोसड़ी के नरा के साथ सबका स्वागत भी किया जाता है और गाली भी दी जाती है। यहां दो ही संसद है एक तो दिल्ली में है दूसरा पप्पू की दुकान। जहाँ सबको समान अवसर दिया जाता है। यहाँ पर किसी भी प्रकार का जातिगत भेदभाव देखने को नहीं मिलता है, और सभी लोग अपने स्वतंत्र विचार रखते हैं। "पप्पू की दुकान इन्हीं कलाकारों, चित्रकारों, पत्रकारों, नेताओं और नागरिकों की दैनिक (अर्थात दिन की) छावनी है!

अक्टूबर के दिन। सुबह के नौ बज रहे थे। दुकान ग्राहकों से भरी हुई थी। कुछ लोग खाली होने के इंतजार में गिलास लिए खड़े थे। शोर शराबा काफी था, अगर बातें एक मुद्दे पर नहीं टिकी थी – कभी मंडल, कभी खरमंडल (मंदिर – मस्जिद), कभी बंडल– शतल की तरह आ जा रहे थे! कुछ लोग सुबह का अखबार देख रहे थे, कुछ पढ़ रहे थे, कुछ चाट रहे थे।"[18]

इस उपन्यास में कोई विशेष पात्र न होकर मोहल्ला अस्सी ही विशेष पात्र है जिसके इर्द–गिर्द पूरी कथा चलती रहती है, जिसमें सभी पात्र एक एक करके आते हैं, और अपने विचार रखते हैं। यहाँ पर सभी प्रकार के मुद्दों पर विचार विमर्श होता है, चाहे वह बाबरी मस्जिद विध्वंस और राजनीति, धर्म, जाति, शिक्षा व्यवस्था, कानून व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था, आदि हो। इन सभी पर लेखक करारा व्यंग्य भी किया है। "आम आदमी की आवाज को रचना केंद्र से उठाते हुए समय और संस्कृति के सवालों को तय करने के लिए उपन्यास के भीतर एक साथ उपन्यास कहानी नाटक साक्षात्कार और आलोचना की विधा को एक में गूंथते हुए यहां जीवन के चौराहे से रचना के संघर्ष को केंद्र में रखा गया है।"[19]

'काशी का अस्सी' उपन्यास में आम आदमी की दुख दर्द की कथा कही गई है। पूँजीवाद के फलस्वरूप मानवीय मूल्यों का विघटन राजनीति का पतन, रिश्तो की बागडोर का टूटना और हमारी आस्था पर चोट होता दिखाई देता है। ललित श्रीमाली ने अपनी पुस्तक भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास में लिखा है – "मनुष्य के जन्म के साथ ही उसका चौराहा उसकी कहानियों का दृश्य रहा है। यह चौराहा कभी अस्सी बनता है तो कभी किसी देश का चौराहा, यहाँ से आम आदमी की धड़कनें जन्म लेती हैं, उसी में देश की किस्मत छुपी हुई है। दरअसल मानवीय संस्कृति के विरूपित होते जाने का लक्षण है। केवल बनारस नहीं मर रहा है, नाम नहीं मर रहा है, नाम के साथ हमारी आस्था, हमारी संस्कृति, हमारे जीवन पर चोट हो रही है, इसी चोट आहत आम आदमी के दर्द का यह बयान है।"[20]

काशीनाथ सिंह स्वतंत्रता से लेकर अब तक हो रही राजनीतिक परिवर्तन एवं उसमें जो खामियां या भ्रष्टाचार है उसको बहुत करीब से देखा है। जनता एक राजनेता का चुनाव करती है लेकिन नेता लोग व्यक्तिगत फायदे के लिए कुछ भी करा सकते हैं। कोई दंगा हो या धर्म के नाम पर कोई विवाद हो।

उसमें तो सबसे ज्यादा समस्या सामान्य जनता को ही होती है। उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं कि मंडल कमीशन हो या राम मंदिर मुद्दा दोनों में राजनेता आम आदमी को मूर्ख बनाता है। "देश जल रहा था उसके पहले से। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक। सिर्फ दिल बचा था दिल माने उत्तर प्रदेश! मंडल कमंडल के झगड़े ने इसे भी लपेट लिया। दिल्ली की सरकार अब गई कि तब गई – यही लगा हुआ था। पप्पू की दुकान के सामने, वीरेंद्र श्रीवास्तव कहते हैं कि ''पीएम मंडल आयोग में फंस गया, सीएम बाबरी मस्जिद में और डी एम दोनों की व्यवस्था में – देश भोसड़ी के जहाँ के तहाँ है।"[21]

काशीनाथ सिंह सन 1992 की राजनीतिक व्यवस्था के साथ–साथ मानवीय संबंधों में क्या क्या बदलाव हुआ इसकी भी पड़ताल करते हैं। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिवर्तन भी हुआ। बाबरी विध्वंस और मंडल कमीशन ने समाज में एक नई सोच विकसित की, सोचने और तर्क करने की क्षमता विकसित किया। धर्म के ठेकेदारों ने आपस में लड़ाई लड़ा दी। सामान्य जन समूह को इसका सामना करना पड़ा, बहुत से लोगों का मृत्यु हो गया, न जाने कितने अंधे, लूले, लंगड़े हो गए। यह मस्त मौला शहर बनारस में अचानक हिंदू मुस्लिम भाईचारे का संबंध जातिगत समीकरण वर्ग से ग्रस्त हो गया। एक दूसरे के ऊपर आरोप, प्रत्यारोप करने लगे, और एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। "काशीनाथ सिंह ने इन सब बदलती परिस्थितियों का लाइव शो दिखाया। उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक शहर और सांस्कृतिक मुहल्ले से ज्यादा बेहतर कहाँ दिख सकता था यह परिवर्तन।"[22]

बाजारवाद ने मनुष्य की संवेदनशीलता को खत्म कर दिया। यह उपन्यास लोक संस्कृति के विघटन के साथ–साथ उससे सामना करने का भी सुझाव दिया है। पाश्चात्य सभ्यता को काशी के लोग स्वीकारना नहीं चाहते लेकिन मजबूरन स्वीकारना पड़ा। लोग अर्थ केंद्रित हो गए, अर्थ के पीछे भागने

लगे और अपने घर परिवार से दूर होते चले गये। उसे सिर्फ बाहरी दिखावा पन से ही इज्जत सम्मान मिलने लगा। जबकि वह धीरे–धीरे अकेलापन की तरफ बढ़ता गया। हम जैसे जैसे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृत का अनुकरण करते गए वैसे वैसे हम अपने माता–पिता भाई–बहन सगे संबंधी से दूर होते चले गए। " अब हम न केवल पाश्चात्य परिधानों को पहनते हैं बल्कि पाश्चात्य जीवन शैली को जीते हैं। हमारी अपनी पहचान बड़ों के प्रति आदर, त्याग, ममता, दया, सहिष्णुता, मानवता, पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण, स्वार्थ, ऐश्वर्य, तथा स्व अथवा आत्मकेंद्रित विचारों के आगे बौने साबित हो गए हैं।"[23]

3. 'ग्रामीण परिवेश का बदलता स्वरूप और रेहन पर रग्घू'

भारतीय संस्कृति और लोक संस्कृति में रिश्तों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह रिश्ते नाते, परिवार का टूटना, व्यक्ति सिर्फ अर्थ(धन) के पीछे भाग रहा है, वह इस प्रकार गिर जाता है कि माता–पिता भाई–बहन एवं संबंधों को अनदेखा कर देता है तथा मानवता का भी हत्या कर देता है। इन सभी समस्याओं को काशीनाथ सिंह बहुत करीब से देखा है। आज के युवाओं में रिश्तो की कोई अहमियत नहीं है। इन्हें रिश्ते एक प्रकार का बंधन लगता है। माता–पिता परिवार से दूर रह कर के अपने को स्वतंत्र पाना चाहते हैं और सिर्फ अपने लिए अर्थोपर्जन करना चाहते हैं, अपने लिए बनाना चाहते हैं।

'रेहन पर रग्घू' में दो पीढ़ी और दो संस्कृति कि टकराहट है "रेहन पर रग्घू नैतिकता वगैरह की बात नहीं करता, सही गलत, पाप पुण्य, की भी बात नहीं करता, बल्कि सिर्फ एक ऐसे परिवार में घुस जाता है जहां दो पीढ़ियां एक साथ जीवन निर्वाह कर रही हैं, और फिर चीजें अचकचाकर सामने आने लगती हैं। मुनाफे की ललक, ख्वाहिशों की पुलिंदा, संबंधों का दरकना सब जस का तस दिखने लगता है। एकदम नंगा यथार्थ। यह उपन्यास भूमंडलीकृत भारत के भीतरी सच्चाई को उधेड़कर रख देता है।"[24] इन संबंधों के टूटने के

पीछे भूमंडलीकरण का प्रभाव देखा जा सकता है कि लोग पैसे को पाने के पीछे अंधे हो गए हैं सभी रिश्ते नाते तोड़ देते हैं इसी का चित्रण 'रेहन पर रग्घू' में देखा जा सकता है। रोल्फ फाक्स का कहना है कि हम अपनी संस्कृ ति को छोड़कर जीवित नहीं रह सकते। "अपने सांस्कृतिक अतीत को तिलांजलि देकर कोई भी जाति इतिहास में अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकती, वैसे ही जैसे कि राजनीतिक अतीत को छोड़ने पर अपनी भूमिका अदा नहीं कर सकती। वह लेखक जो अतीत की संस्कृति से जीवित परम्परा को न लेकर सौंदर्यानभूति के रूप में केवल जीवन शून्य प्रेतात्माओं की विरासत संभालता है स्वयं अपने लक्ष्य के साथ धोखा करता है।"[25]

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र रघुनाथ अत्यधिक मेहनत करके अपने बच्चों को पढ़ाते लिखते और शिक्षित करते हैं। इनके तीनों बच्चे अपने पैर पर खड़े होने योग्य हो जाते हैं। इसी बीच रघुनाथ अपने स्कूल के मैनेजर की पुत्री से विवाह कराना चाहते हैं तो इनका बड़ा बेटा संजय शादी से इंकार कर देता है। वह अपने माता–पिता की बिना प्रवाह किए ही शादी कर लेता है। काशीनाथ लिखते हैं "संजय ने प्यार किया था सोनल को यह प्यार किसी सड़क छाप टुच्चे युवक का दिलफेंक प्यार नहीं था, इसमें गुणा भाग भी था और जोड़ घटाव भी। जितना गहरा उतना ही व्यापक।"[26]

संजय ने शादी कर ली अपने पिता को न्योता भी भेजा था लेकिन वह नहीं गए। संजय अब स्वार्थी और लोभी हो गया है यह शादी को बस एक माध्यम मानता है जिससे उपर की ओर बढ़ा जा सके। " इनके पास(संजय और धनंजय) कोई सिद्धांत नहीं है, समाज को लेकर कोई भावी योजना नहीं है, कोई बौद्धिक दृष्टि नहीं है। समाज की माली हालत को लेकर कोई दुख नहीं है अगर कुछ है इनके पास तो धनलोलुपता और जीवन की सुख को निचोड़ कर भरपूर जी लेने की ख्वाहिश।"[27]

संजय की महत्वाकांक्षा इतना बढ़ गया कि वह पहले शादी इसलिए किया कि उसे अमेरिका जाने को मिलेगा और वहां अच्छे पोस्ट और अधिक से अधिक धन एकत्रित करेगा। वह अमेरिका चला जाता है, वहाँ पर जाकर एक अन्य लड़की से प्यार करता है। वह भी एक धनी लड़की और उसका धन देख कर। वह अपने माता पिता की इकलौती बेटी थी जिसके पास करोड़ों की संपत्ति थी।

पूँजीवाद के फलस्वरूप लोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन होता चला जा रहा था जैसे रघुनाथ कृतज्ञता को महत्व देते थे लेकिन संजय जो दूसरी पीढ़ी का है उसके लिए कृतज्ञता का कोई स्थान ही नहीं है। संजय रिश्ते नाते पैसे, धन पर आधारित मानता है।

भूमंडलीयकरण के वजह से परिवार का विघटन एवं सामाजिक संरचना का कमजोर पड़ना दिखाई देता है। लोगों के व्यवहार में परिवर्तन परिलक्षित होता है। रघुनाथ ने कितना परिश्रम करके, अपने दुख सुख सबको भूल करके उनका बस एक ही चिंता थी कि हमारे बच्चे किसी अच्छे पद पर हो जाए और अपने पैरों पर खड़ा हो जाए। जिससे इनको बहुत सुकून और संतुष्टि मिलेगी। रघुनाथ संजय कि शादी में जाने से इंकार कर देते हैं जानकी इनका छोटा बेटा धनंजय (रानू) संजय की शादी में जाता है, वहाँ से लौटते समय संजय ने पिता के लिए काफी मात्रा में धन भेजता है उसमें से पचास हजार रानू निकाल लेता है पूछने पर वह कहता है कि आप मेरे लिए अभी तक क्या किए हैं, सभी को आप पढ़ाए लेकिन हमारा एडमिशन नहीं कराए। रानू घर छोड़कर शहर चला जाता है वहां पर जाने के बाद यह झूठ बोलता है कि हम पढ़ाई कर रहें हैं लेकिन वास्तविकता यह थी कि वह कुछ नहीं कर रहा था। शहर जाने के बाद से ही वह एक विधवा लड़की विजया जो एक बच्चे की माँ है उससे प्रेम का ठोंग रचता है और साथ रहने लगता है। एक बार विजया को और बच्चे को लेकर एक बार गाँव आता है लेकिन घर पर न रुक कर शहर

में रुकता है। वह घर आया तो उसकी भाभी उसके और विजया के रिश्तों के बारे में पूछती हैं। धनंजय मुस्कुरा कर जवाब देता है – "भाभी, मामला कुछ भी नहीं है! बात सिर्फ इतनी है कि उसे मेरी जरूरत है, और मुझे उसकी – जब तक जाब नहीं मिल जाती!"[28]

धनंजय का कहना है कि हम विजया के साथ तभी तक रहेंगे जब तक मेरी नौकरी नहीं लग जाती। अर्थात् वह लोभी किस्म का व्यक्ति हो गया है। उसे पैसे के मोह ने उसे बदल दिया है। दूसरी तरफ संजय को सोनल प्यार करती है वह उसके साथ रहना भी चाहती है उसके साथ जीवन बिताना चाहती है। लेकिन संजय का मुख्य लक्ष्य प्यार और शादी नहीं था वरन उसका एक ही लक्ष्य अमेरिका जाना। यह बात सोनल को नहीं पता था। संजय अमेरिका जाकर एक धनी व्यक्ति बनने के होड़ में वही एक अन्य लड़की से प्यार करते हैं यह सब सोनल जानती हुई भी उनके घर वालों को अपने साथ रहने के लिए बुलाती है और स्वयं नौकरी भी करती है। रघुनाथ और शीला का देखभाल करती रहती है। शीला तो जल्द ही अपनी बेटी सरला के घर चली जाती है, शीला को शुख और आराम चाहिए। इस उपन्यास में प्रत्येक पात्र स्वतंत्र रहना चाहता है । संजय और धनंजय दोनों घर से बाहर शहर में रहने लगते हैं। जब रघुनाथ अपनी जमीन और अपनी जन्मभूमि पर आने के लिए कहते हैं तो दोनों बेटों ने मना कर दिया। इसी बीच नरेश रघुनाथ को जमीन के लफड़े को लेकर धक्का मार कर गिरा देता है। व्यक्ति निरंकुश और बर्बर होता चला जा रहा है उसे अपने पुराने संबंध को भूल हा रहे हैं। अर्थ, धन उसे लालची और हिंसक बना देता है। इन सब समस्याओं को देखकर रघुनाथ बनारस आ जाते है और सोनल के साथ रहने लगते हैं। सोनल का एक दोस्त इनके घर आता रहता था, रघुनाथ को यह सब पहले तो बुरा लगता था लेकिन जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे ही परिस्थिति के अनुसार विचार में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

भूमंडलीकरण के कारण सामाजिक संबंध अर्थ पर केन्द्रित हो गयी। आज के समय में दहेज प्रथा का बढ़ता प्रभाव बाजारवाद की ही देन है। लोग ऐसे घर में शादी करना चाहते हैं जहां पर ढेर सारा धन और नाम मिले की यह व्यक्ति इतने बड़े घर में शादी किया, इतना दहेज मिला इत्यादि।

रघुनाथ प्राचीन और पाश्चात्य सभ्यता के बीच पिसते हुए दिखाई दे रहे हैं। पहले के समय में जहाँ विश्वास, प्रेम, आदर्श, भाव, सम्मान, थे वहीं आज सब कुछ स्वार्थ, लोभ सब कुछ पैसे पर केंद्रित हो गया है। रघुनाथ मैनेजर की बेटी से शादी करना चाहता है ताकि उसे ढेर सर धन मिल सके जिससे कि अपनी बेटी की शादी किया का सके। यही संस्कार बच्चो में भी गया, वह भी अपनी शादी अर्थ को देखते हुए किए। संजय ने सोनल से शादी इसलिए किया कि वह कैलिफोरनिया जा सके। सोनल के पिता ने 5 लाख रुपए भी दिए थे ताकि मेरी बेटी से यह शादी कर ले क्योंकि बेटी कम सुंदर थी। रघुनाथ, संजय, सोनल, सरला, धनंजय सभी का संबंध धन पर ही केन्द्रित है।

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास पूँजीवाद के बाद बुजुर्गों की स्थिति का चित्रण करता है। जब रघुनाथ की स्वास्थ्य खराब होने लगती है उस दौरान उनके पास उनका अपना कोई नहीं रह जाता। उस समय सोनल और उसका दोस्त ही इनका देखभाल करते हैं, उस परिस्थिति और अपने बेटे की दूरी को देख कर यह लगा कि सोनल के जीवन में किसी पुरुष का आना बुरा नहीं है आखिर यह कब तक इंतजार करती रहेगी। वह मन ही मन इन दोनों को आशीर्वाद दिए। सोनल एक प्रगतिशील पात्र है जो अनेक समस्याओं को झेलते हुए वह नौकरी करके स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती है। और अकेले रहने पर एक दूसरे व्यक्ति की आश्यकता होती है जिससे वह अपने मित्र को ही अपना लेती है, स्वीकार कर लेती है। चौथीराम यादव ने 'रेहन पर रग्घू' को दो संस्कृतियों कि टकराहट की देन मानते हैं "रेहन पर रग्घू इन्हीं दो संस्कृतियों के द्वंदात्मक संघर्ष और किसान संस्कृति के उजड़ने का महा आख्यान है और

रघुनाथ इसके महानायक। रघुनाथ देख रहे हैं कि पहाड़पुर बड़ी तेजी से बदल रहा है। परिवर्तन जीवन मूल्यों में हो रहा है और पहाड़पुर के इतिहास भूगोल के भी।"[29]

20 वीं सदी के अंतिम दशक में आते आते सामूहिकता के स्थान पर लोग अकेले रहना चाहते हैं। समूह में काम करना, समूह में घर से बाहर निकलना, एक दूसरे के दुख दर्द को पूछना इसका अभाव दिखाई दे रहा है। लेकिन भूमंडलीय करण के फलस्वरूप व्यक्ति आत्मनिष्ठ और आत्मकेंद्रित हो गया है। अब तो लोग परिवार में भी स्वतंत्रता ढूंढ़ रहे हैं। पहले के समय में गली मोहल्ले, घाट, खेतों आदि में एक दूसरे से मिलते थे, बात करके उनके हाल खबर पूछते थे लेकिन टेक्नोलॉजी के दौर ने इतना प्रभावित किया कि आज लोग मोबाइल, टीवी, इंटरनेट, आदि में लोग उलझे हुए हैं। यह उपन्यास आज के टेक्नोलॉजी और मानवीय संबंधों के बिगड़ते परिवेश का यथार्थ चित्रण करने में सफल हुआ है।

4. मध्यवर्गीय स्त्री चेतना और महुआचरित

काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'महुआचरित' कहने को तो एक लघु उपन्यास है परन्तु महुआचरित अपने सौ पृष्ठों के लघु कलेवर में ही मध्यवर्गीय जीवन की अनगिनत समस्याओं से पाठकों को परिचित कराता है। महुआचरित समकालीन सामाजिक परिवेश विशेषतः स्त्री अस्मिता बोध को पूरी निष्ठा से दर्शाने में सफल सिद्ध होता है। उपन्यास की नायिका महुआ मध्यवर्गीय परिवार के 80 वर्षीय सेक्युलर सोच वाले स्वतंत्रता सेनानी पिता की कुँवारी और उच्च शिक्षा प्राप्त बेटी है। महुआ देह और मन दोनों से परिपक्व हो चुकी है, उसकी अवस्था 30 वर्ष की है। कैरियर बनाने की जुनून में अब तक महुआ ने जीवन की अन्य आवश्यकताओं को अनदेखा किया है। उसने कभी भी स्वयं को लक्ष्य से भटकने नहीं दिया, "जब तक मैंने पढ़ाई खत्म नहीं कर ली तब तक प्यार

की अहमियत मेरे लिए एक फुटनोट से ज्यादा नहीं भी। यह तब कह रही हूँ जब थीसिस जमा हो चुकी है। ऐसा नहीं कि मुझे प्रेमी नहीं मिले, मिलें बातें भी कीं, पीछे भी पड़े लेकिन उन्हें समझते देर नहीं लगी कि इस तरह की फालतू चीजों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं। अगर कैरियर बन जाए तो इसके लिए सारा जीवन पड़ा है।"[30] जैसे ही महुआ थीसिस जमा करके स्वयं को कैरियर बनाने की चिंता से मुक्त पाती है, " थीसिस जमा करने के बाद मैं एकदम खाली। समय ही समय। काटे ना कटे। कोई कितना पढ़े उपन्यास, कविताएं कहानियाँ ? कोई कब तक देखे खिड़की से सड़क पर आते–जाते आदमी? कोई कब तक सुने पुरानी फिल्मी क्लासिकल गाने? किसी सहेली से फोन पर बातें भी करो तो कब तक और कितनी?"[31]

अब महुआ की दमित इच्छाएं फूट पड़ती हैं। अब वह अपनी देह जरूरत पर नियंत्रण पाने में असमर्थ थी "मैं अकेली बेहद अकेली हो गई थी। मैं जब भी बाथरूम में नहाने जाती, कपड़े अलग करती और अपने बदन को बड़े गौर से देखती। हो सकता है गलत हो यह लेकिन जाने क्यों मुझे लगता है कि यह शरीर गमले में पड़े गुलाब के उस पौधे की तरह हो गया है जिसे अगर तुरंत पानी न मिला तो सूखने देर न लगेगी। इसे पानी चाहिए, कोई पानी दो लेकिन कौन देगा पानी?"[32]

इस प्रकार महुआ अब अपने शरीर की आवश्यकताओं को तीव्रता से महसूस कर रही थी लेकिन समाज की मान – मर्यादा उसे दबाए हुए थी। वह चाहती थी घर– परिवार उसे उसके अनुसार जीने की स्वतंत्रता प्रदान करे परंतु उसके रिटायर्ड पिता देश – दुनिया की खबर रखते थे, स्त्री के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण रखते थे परंतु कभी बेटी की उम्र और उसकी आवश्यकताओं की तरफ ध्यान नहीं देते थे । महुआ के शब्दों में "सारी जिंदगी तुम देश दुनिया के बारे में सोचते रहे कभी अपनी बेटी के बारे में भी सोचा? तुम्हें तो यह तक पता नहीं कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उन्नतीस या

तीस, तुम जिन सहेलियों के बारे में पूछते हो, उनमें कितनी माएं बन चुकी हैं और कितनी पेट से है? तुम यह भी जानते हो कि न दहेज दे सकते हो, न मैं वैसी शादी कर सकती हूँ। फिर तुम खुलकर क्यों नहीं कहते कि बेटी, तुम्हें जो करना है करो। हम साथ हैं तुम्हारे।''[33]

महुआ के माध्यम से काशीनाथ सिंह समाज को स्त्रियों की इस समस्या से अवगत कराना चाहते हैं कि एक स्त्री जिसका यौवन चरम पर है वह शादी की उम्र सीमा लाँघ रही है परंतु माता–पिता उसकी शादी के विषय में नहीं सोचते तब एक स्त्री स्वयं से प्रश्न करती है कि इस समाज में स्त्री को अपने जीवन के अहम फैसले लेने का अधिकार क्यों नहीं है वह अपनी मर्जी से शादी क्यों नहीं कर सकती।

साजिद एक शादीशुदा व्यक्ति है वह दो बच्चों का पिता है परंतु महुआ से महज दो चार दिन का संपर्क होते ही वह महुआ को लेकर हैदराबाद चला जाता है वह भी अपनी पत्नी हमीदा बेगम के नाम पर महुआ को बतौर अपनी पत्नी बनाकर हैदराबाद में सबके सामने पेश करता है। बारह दिन एक ही कमरे में रहकर महुआ के साथ शारीरिक संबंध बनाता है उसे कोई चिंता नहीं है क्योंकि उसे किसी को जवाब नहीं देना है कि वह कहाँ गया? किसके साथ गया? क्यों गया? क्या किया? क्या वह अपनी पत्नी के साथ धोखा नहीं कर रहा था उसे अपनी पत्नी को अपनी पवित्रता का प्रमाण क्यों नहीं देना पड़ता वह इतनी आसानी से अपनी पत्नी हमीदा को धोखा दे रहा था वह यह सब इतनी आसानी से इसलिए कर जा रहा था क्योंकि वह एक पुरुष है यह समाज पुरुष के लिए कोई नियम व अनुशासन क्यों नहीं बनाता।

महुआचरित उपन्यास के माध्यम से काशीनाथ सिंह ने समाज की अनगिनत समस्याओं को उकेरा है। धर्म और जाति संबंधी रूढ़ियाँ, पारिवारिक विघटन, पाश्चात्य अंधानुकरण के कारण युवा पीढ़ी में एकाकीपन, रिश्तो में आत्मीयता का अभाव, स्त्री–पुरुष संबंधों में विघटन आदि समस्याएं इस

उपन्यास के केंद्र में हैं। महुआचरित उपन्यास में कई जगह हमें पारिवारिक विघटन एवं रिश्तो में आत्मीयता का अभाव देखने को मिलता है। अत्यधिक स्वच्छंदता ने युवा पीढ़ी को पाश्चात्य अंधानुकरण की ओर धकेला है। परिवार से अलग रहने वाले हर्षुल और महुआ का भाई सुशांत पारिवारिक रिश्तो को अनदेखा करते हैं। सुशांत माता–पिता को कभी फोन नहीं करता, उनसे कभी कोई संबंध भी नहीं रखता। वह अपने मन से प्रेम विवाह कर लेता है वह भी माता–पिता की बिना सहमति और उनकी अनुपस्थिति में। एक मध्यवर्गीय व्यक्ति की सोच जिन बिंदुओं को अनदेखा नहीं कर सकती ऐसी सभी समस्याएं महुअचरित व्यक्त करता है जैसे महुआ के माता–पिता ने बहू के रूप में एक सुंदर संस्कारी लड़की की कल्पना कर रखी है पर "बहू को देखने के बाद ही मम्मी पापा का चेहरा उतर गया था उन्होंने और मैंने भी सोचा था कि आम पंजाबी लड़कियों की तरह बलविंदर भी गोरी, लंबी, खूबसूरत सुघड़ होगी लेकिन यह नाटे कद की दोहरे बदन की लड़की थी शायद सुशांत से उम्र में बड़ी।"[34] इसी प्रकार हर्षुल के माता पिता भी हर्षुल से नाराज थे क्योंकि उसने भी अपनी मर्जी से महुआ से शादी की थी। हर्षुल के माता पिता ने हर्षुल के पास कभी न आने की कसमें खाई थी।

हमारा समाज कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाए वह स्त्री को पूर्ण स्वतंत्र कभी नहीं कर सकता। यदि वह स्त्री को घर से बाहर जाने की पढ़ने लिखने की स्वतंत्रता दे दे तब भी चरित्र या यौन संबंधों की स्वतंत्रता नहीं दे सकता। चारित्रिक शुद्धि का यह नियम किसी पुरुष पर अर्थात् कालेज पढ़ने वाले अथवा नौकरी करने वाले नवयुवक पर क्यों लागू नहीं होता। क्यों कोई उससे उसकी यौन पवित्रता, चारित्रिक शुद्धि का प्रमाण नहीं मांगता। सिर्फ स्त्री को ही क्यों अपनी पवित्रता का प्रमाण देना होता है। अगर इस आधुनिक कहे जाने वाले समाज ने स्त्री को इस रूढ़ि से मुक्ति दी होती तो क्या महुआ को हर्षुल के साथ अपनी शादी के पश्चात शारीरिक संबंधो के दौरान अपनी

चारित्रिक पवित्रता बनाम यौन शुचिता का परिचय देने के लिए झूठे दांव पेंच खेलने पड़ते। "मैंने पूरी कोशिश की वह विश्वास कर ले कि मेरे यौवन का प्रथम पुरुष वही है, और इसमें कामयाब भी हुई।"[35]

हमारे समाज ने स्त्री और पुरुष के लिए दोहरे मानदंड गढ़े हैं इसका उदाहरण हम उपन्यास में कई जगह देख सकते हैं सबसे पहला उदाहरण साजिद है जो शादीशुदा होते हुए भी महुआ के साथ बारह दिन हैदराबाद रह कर आया। वहाँ से लौटने पर उसको किसी बात की चिंता नहीं थी उसके चेहरे पर एक शिकन तक नहीं थी । वहीं महुआ हैदराबाद से लौटने पर तमाम प्रकार की चिंताओं से गिरी थी उसके मन में कई सवाल उठ रहे थे।

महुआचरित उपन्यास में लेखक ने महुआ के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन एवं नारी मन की तह तक पहुंचने का सार्थक प्रयास किया है। उपन्यास केवल तन की बात नहीं करता बल्कि रिश्तो की बिखरने के बाद मन के बिखरने की टीस को बखूबी बयॉ करता है। उपन्यास की आरंभिक पृष्ठ कवर पर अंकित यह पंक्ति इस उपन्यास का मूल उद्देश्य बयॉ करती है, "स्त्री विमर्श की अनुगूंज के बावजूद यह प्रश्न आकार लेता है ऐसा क्या है देह में कि उसका कुछ नहीं बिगड़ता लेकिन मन का सारा रिश्ता नाता तहस–नहस हो जाता है।"[36] स्त्रियों की महत्ता को दिखाते हुए डॉ अमरनाथ लिखते हैं कि "हममें से अनेक का विश्वास है कि संसार के हर मुद्दे का संबंध स्त्रियों से है क्योंकि है बात, हर घटना उन्हें प्रभावित करती है, वे है स्त्री होने के साथ साथ मनुष्य है, संसार की आधी जनता है, अतः हर विषय उनसे संबंध रखता है।"[37]संसार में प्रत्येक स्थान पर स्त्री पुरुष में भेद किए जाते हैं, दोनों के लिए अलग अलग मानदंड है। डॉ मुक्ता त्यागी कहती हैं कि "यौन नैतिकता स्त्री – पुरुष में इतना भेद करती है कि एक पुरुष के विवाह से पहले संबंध आमतौर पर निंदा का विषय नहीं है, जबकि कन्या का विवाह से पूर्व यौन संबंध उसे अपवित्र करार के देता है।"[38]

उपन्यासकार ने स्त्री मन की तह तक पहुंचने के साथ ही पुरुष वर्ग की अवसरवादिता एवं तुच्छ मानसिकता के यथार्थ का भी पर्दाफाश किया है। पुरुष स्त्री को सदैव बेड़ियों में जकड़ने का अवसर चाहता है चाहे वह बाहरी बेड़ियाँ हो या फिर स्त्री के स्वतंत्र विचारों पर लगने वाली बेड़ियां हो । वह सदैव स्त्री को अपने अनुसार बनाए गए नियम व अनुशासन में रखना चाहता है।

5. 'उत्तर महाभारत कालीन कृष्ण की कथा और उपसंहार'

काशीनाथ सिंह का अन्तिम उपन्यास उपसंहार 2014 में प्रकाशित है। जिसमें उत्तर महाभारत कालीन कृष्ण के कथा का वर्णन किया गया है। इन्होंने महाभारत के युद्धोपरांत कृष्ण कथा को केंद्र में रखा है। इस कथा का जिक्र बहुत कम देखने को मिलता है। कृष्ण यादव कुलों की रक्षा के लिए मथुरा छोड़कर द्वारका नगरी का निर्माण किए थे जिस समय द्वारका का निर्माण किए उस समय इनके पास ईश्वरी शक्ति थी बल, वैभव था। जिसे कारण द्वारका नगरी को बसाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। समुद्र से बोले कि थोड़ा जमीन चाहिए समुद्र ने अपना विस्तार कम कर लिया, विश्वकर्मा को याद किए विश्वकर्मा तुरंत आ गए कुछ ही दिनों में महलों और द्वारका नगरी को सुसज्जित कर दिए। सभी लोग सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे और अच्छा संस्कार मिलने लगा। द्वेष, लड़ाई, हिंसा इत्यादि प्रवित्ती खत्म हो गई। सभी लोग सामूहिकता में रहने लगे, सामूहिक काम भी आराम से कर लेते हैं। वहाँ के जीवन शैली में बहुत परिवर्तन देखने को मिला।

पाण्डवों और कौरवों में राज्य को लेकर विवाद खड़ा हो गया और युद्ध की स्थिति आ गई, दोनों लोग कृष्ण से युद्ध के लिए सहयोग माँगने आ गए, कृष्ण ने दोनों से युद्ध में सहयोग के लिए बोले और पांडवों की तरफ निशस्त्र कृष्ण और कौरवों की तरफ उनकी अक्षौहिणी सेना हो गई। बलराम कई बार मना करते हैं कि यह गलत और नीति विरुद्ध है कि एक तरफ तुम और दूसरी

तरफ तुम्हारी अक्षौहिणी सेना। और आगे बोले कि छोड़ो जाने दो उनका दो परिवार का मामला है उसमें जाने की क्या जरूरत है तुम चाहो तो युद्ध रोक सकते हैं। लेकिन कृष्ण महाभारत के युद्ध में जाते हैं और युद्ध में अपने को शक्तिशाली रूप में समझते हैं की जिधर हम निशस्त्र रहेंगे कोई कुछ नहीं कर पाएगा। युद्ध के अंतिम दिन वह एकदम विक्षिप्त हो जाते हैं न जाने कितने लाख लोग मारे गए थे। वह सोचते है कि जो हमारे ही भरोसे पर आये थे, जिनका रक्षा करने के लिए स्वयं लाये थे हम उनका ही संहार होते देख रहे हैं। युद्धोपरांत जब वह वापस आते हैं तो वह देखते हैं कि समुद्र के किनारे वहां के नगरवासी कतार में खड़े देख रहे हैं तो दारुक से पूछते हैं कि अब क्यों भीड़ है दारूक बोलते हैं " ये अपने उन स्वजनों के लिए खड़े हैं, जो अब कभी नहीं लौटेंगे"[39]

कृष्ण हमेशा अपने लोगों के पास एवं उनका होकर रहना चाहते हैं पहले तो उनका चरमोत्कर्ष ईश्वरी रूप था, जिसके कारण उनका महल सबसे ऊँचा बना हुआ था। लेकिन जब महाभारत की युद्ध उपरांत आते हैं देखते हैं कि सभी जन विलाप कर रहे हैं, अपने पिता, बेटा, पति का इंतजार कर रहे हैं। जब दारूक से पूछते हैं कि क्या यह विलाप प्रत्येक गली में है तो दारुक बोला कि पता नहीं हम तो आपके साथ ही हैं। गलियों नगरों का बिलखने चिल्लाने की आवाज सुनते सुनते जब वह अपने महल पहुंचते हैं तो कहते हैं "दारूक किसी राजा का महल इतनी ऊँचाई पर नहीं होना चाहिए कि वह लोगों का रोना गाना न सुन सके"[40] कृष्ण बचपन में ही अच्छे राजा के गुणों के बारे में सुना था और वे एक अच्छे राजा बनने की भरपूर प्रयास किते। इनका गॉव प्रति अटूट लगाव भी था " गाँव में घुसने का अर्थ है– लोक में घुसना, लोक को जानना, उनकी जरूरतों, उसकी इच्छाओं आकांक्षाओं से परिचित होना। जो राजा लोक को नहीं जानता वह राज्य को नहीं जानता"[41] कृष्ण धर्म और न्याय के साथ थे, उनका कहना था कि दुर्योधन अन्याय और

धर्म कर रहा है। यह पाण्डवों की तरफ से थे। पाण्डव जीत भी जाते हैं लेकिन क्या पाण्डव जिस राज्य के लिए लड़े वह राज्य सुखी है? क्या राजा प्रजा के सुख दुख एवं उनकी समस्याओं को जानने का प्रयास करता है? युधिष्ठिर जुए में मशगूल था, उन्हें किसी भी चीज से मतलब नहीं था, राज्य में कोई विपदा आती है तो वह कहते हैं कि विधि का विधान है हम कुछ नहीं कर सकते। क्या दुर्योधन न्याय और धर्म का शासन चला रहे हैं? तो फिर ऐसे युद्ध का कोई मतलब नहीं जिसमें सभी लोगों की हत्या भी हो और राज्य को राजा ठीक से न चला पाए।

कृष्ण को जो ईश्वरत्व प्राप्ति थी, क्या वह नीति पूर्वक युद्ध लड़े? क्या वह धर्म की लड़ाई लड़े? जब दुर्योधन को भीम नहीं मार पा रहे थे तो कृष्ण ने ही उनकी जांघों पर वार करने का संकेत करते हैं। जबकि युद्ध में कमर से नीचे वार करना नियम के विरुद्ध है। महाभारत का युद्ध देखने के बाद तो यही समझ में आता है कि कोई भी समस्या युद्ध से हल नहीं किया जा सकता। युद्ध से और भी अधिक विकट स्थिति उत्पन्न होती है। युद्ध से धन, व्यक्ति की मृत्यु और भी जीवों को क्षति पहुंचता है। यह उपन्यास समकालीनता से सटीक रूप से जुड़ता है। लोग कैसे आज के समाज में जमीन, मकान, धन और प्रभुत्व को प्राप्त करने के लिए अपने भाई पिता सगे संबंधी किसी की भी हत्या कर देते हैं, ऐसी स्थिति में और भी समस्या खड़ी हो जाती है। कुरुक्षेत्र में जंगल जल कर खत्म हो गए थे, वर्षा नहीं हो रही थी, वहां अन्न नहीं पैदा हुए, अकाल पड़ गया था। ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर के पास जाते हैं कि हमारे राजा हैं यह हमारा सहयोग करेंगे लेकिन वह कुछ नहीं करते वह कहते हैं कि यह विधि का विधान है हम कुछ नहीं कर सकते।

कृष्ण जब से महाभारत के युद्ध से वापस आए थे तब से वह हमेशा दुखी रहते हैं कि मैं अपने लोगों का अपने ही हाथों हत्या कर दिया, मैं हत्या करके अधर्म की लड़ाई से ईश्वर के पद पा पाया हूँ। कृष्ण को ईश्वर का रूप

माना जाता था वह जिस किसी सभा, जिस किसी समारोह, जिस किसी युद्ध में न जाएं तो वह महत्वहीन समझा जाता था। इसलिए तो पाण्डवों और कौरवों ने युद्ध में बुलाया। युद्ध के 36 वर्ष पश्चात अब कृष्ण का ऐश्वर्या घटता सा दिख रहा है। समुद्र में खड़े होकर मंत्र का पाठ करते हैं लेकिन वह असफल हो जाते हैं। कृष्ण दारूक से हँसते हुए बोलते हैं कि "कुछ नहीं दारुक! लगता है, ऐश्वर्य की भी एक मियाद होती है और वह पूरी हो गई। और वह कब पूरी हुई मुझे पता ही नहीं चला"[42] दारुक को अब भी कृष्ण की बात समझ में नहीं आया। कृष्ण पुनः विस्तार से बताते हैं– "प्रत्येक मनुष्य कभी न कभी कुछ ही पलों या क्षणों के लिए ही सही, किसी न किसी का ईश्वर हुआ करता है । ऐसा एक नहीं, कई बार हो सकता है। आखिर ईश्वर है क्या? मनुष्य के श्रेष्ठतम का प्रकाश ही तो ? और यह प्रकाश प्रत्येक मनुष्य के भीतर होता है। लेकिन फूटता तभी है जब किसी को कातर, बेबस, निरूपाय और प्रजापति देखता है। मैं भी था ईश्वर। हॉ मेरी अवधि किन्ही कारणों से थोड़ा लंबी खींच कर रही होगी"[43] काशीनाथ सिंह कृष्ण के विवशता को लेकर लिखते हैं कि "जिस कृष्ण के विराट रूप के सामने कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी सेना दृष्टि खो बैठी थी, वही कृष्ण अब अवश नजर आते हैं। आखिर क्या है जय का सच्चा अर्थ? क्या तमाम सफलताएं अंततोगत्वा विफलता में ही तिरोहित होती है?"[44]

काशीनाथ सिंह मनुष्यता धर्म को स्थापित करने के पक्ष में हैं उपसंहार में कृष्ण के मन में बार–बार एक प्रश्न हमेशा नाचता रहता है कि "क्या मनुष्य का मनुष्य होना काफी नहीं है? फिर उसे वर्णों में क्यों बाँटा गया? क्यों कहा गया है कि यह क्षत्रिय हैं, यह ब्राह्मण है, यह वैश्य है, यह शूद्र है। द्वारका में तो सब यादव हैं चाहे वे खेती करें, चाहे व्यापार, चाहे लोहे लकड़ी के काम"[45]

इस उपन्यास में कृष्ण ने यह देखा कि हमारी जनता, द्वारकावासी में अब सद्भाव, प्रेम व्यवहार नहीं रह गया है, अब इस राज्य में अनाचार अनैतिकता, मदिरापन, बलात्कार, चोरी, ईर्ष्या की भावना इत्यादि दिखाई देने लगा। इससे कृष्ण को बहुत दुख होता है कि क्या मैं इसलिए द्वारका बसाया था और उन्हें इस बात की भी दुख है कि मैं इन द्वारका वासी के हित में कुछ भी नहीं कर पा रहा। इन सब से आहत होकर उनको अपना बचपन और नंद गाँव तथा वृंदावन याद आने लगा है कि वहाँ सब कुछ अपना था, सभी माँ अपनी माँ थी, सभी बुड्ढे पिता जैसे थे, प्रेम, सौहार्द था, कान्हा कान्हा कहकर लोग बहुत प्रेम करते थे। लेकिन आज द्वारका में क्या हो गया है छोटे बच्चे बड़ों के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। कृष्ण के पुत्र चारुदोष्ण ने कृतवर्मा को राज्यसिंहासन का उत्तराधिकारी कौन होगा इसी को लेकर हाथ से चाता मार दिया।

कृष्ण के पुत्र साम्ब जो गर्भवती होने का ऋषिमुनि के सामने नाटक किया था उसे ऋषि लोग श्राप दिए थे कि तुमसे एक मुसल पैदा होगा जो पूरा वंश का नाश करेगा। इसी को लेकर साम्ब कृष्ण से कहता है कि लोग चिल्ला चिल्लाकर कह रहे हैं कि इसके पिता ने द्वारका को बसाया था और उसका पुत्र उसका विनाश करेगा। कृष्ण कहते हैं। "देखो साम्ब! मरता वही है, जो पैदा होता है। जो पैदा नहीं होता, वह करेगा कैसे? जैसे स्वर्ग! न वहाँ कोई पैदा होता है, न मरता है। पता नहीं, कोई जीता भी है या नहीं"[46] जो मुसल समुद्र में फेंका गया था उसे समुद्र के किनारे सरपत उग गए थे। उसी सरपत को उखाड़कर द्वारकावासी अपने लड़ने लगे और कृष्ण के बेटे को मारा गया तो कृष्ण ने भी उखाड़ कर सबको मार दिए इस तरह से उनकी बसाई हुई द्वारका का विनाश हो गया। कृष्ण द्वारका को " एक ऐसा गणराज्य बनाने में जो दूसरे गणराज्यों के आगे मिसाल हो। जहाँ एक राजा न हो, राज्य का हर एक नागरिक राजा हो। जो भी राज्य का निर्णय हो हर नागरिक का

निर्णय हो।"[47] यह कृष्ण का ही विचार नहीं है अपितु काशीनाथ सिंह का भी मानना है कि यह राजतंत्र नहीं होना चाहिए, लोकतंत्र होना चाहिए। जो राजा हो वह लोक को समझ सके, उनके दुख दर्द समस्या को अपना समस्या माने और जनता का निर्णय भी अपने निर्णय में शामिल करें। ऐसा ना हो कि कोई देश का प्रधानमंत्री अपनी हिटलर के जैसा निर्णय सुना दे, चाहे वह जनता के लिए बहुत कठिन दौर क्यों न हो जाए, इसलिए जनतंत्र या लोकतंत्र होना चाहिए।

उपसंहार उपन्यास में व्यक्ति कैसे एकदम सब कुछ होते हुए भी अकेलापन में है यह उपन्यास समकालीन समस्या की स्थिति का चित्रण करता है इससे यह पता चलता है कि युद्ध या लड़ाई करने का कोई औचित्य नहीं है। हर व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी उसमें भी ईश्वरत्व के गुण आते हैं। काशीनाथ सिंह वर्ण व्यवस्था को नकारते हैं और मनुष्यता धर्म को स्थापित करते हैं।

संदर्भग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव, जगदीश नारायण, उपन्यास की शर्त, पृष्ठ 104

2. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 89

3. शर्मा, सोहन, भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ 432–433

4. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 48

5. वही, पृष्ठ 59–60

6. दुबे, सं०(मनीष), काशी पर कहन, पृष्ठ 373

7. शर्मा, सोहन, भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ 432

8. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 4

9. वही, पृष्ठ 45

10. वही, पृष्ठ 51

11. वही, पृष्ठ 49

12. शर्मा, सोहन, भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ 434

13. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ

14. वही, पृष्ठ 120

15. वही, पृष्ठ 121

16. मेवाड़ी, सं० कमर, संबोधन त्रैमासिक पत्रिका, अक्टूबर 2012 – जनवरी – 2013, राजस्थान, पृष्ठ – 126

17. शर्मा, सोहन, भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ – 428

18. सिंह,काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015पृष्ठ 20

19. सं० पल्लव, अस्सी का काशी(गल्पेतर का ठाठ) पृष्ठ – 94

20. श्रीमाली, ललित, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ – 28

21. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ–23

22. सं० पल्लव, अस्सी का काशी(गल्पेतर गल्प का ठाठ) पृष्ठ – 92

23. सं० पाठक, मानवेन्द्र, वैश्वीकरण हिंदी भाषा और साहित्य, पृष्ठ – 272

24. चौधरी, उमाशंकर, आलोचना(इसी दुनियां में कभी हरा रंग होता था भाई, वह कहां गया?) पृष्ठ 85

25. फॉक्स, रॉल्फ; उपन्यास और लोक जीवन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 125

26. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 20

27. चौधरी, उमाशंकर, आलोचना(इसी दुनियां में कभी हरा रंग भी होता था भाई, वह कहां गया?), जुलाई – सितंबर 2008, पृष्ठ 86

28. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014,पृष्ठ 130

29. यादव, चौथीराम, लोकधर्मी साहित्य की दूसरी परंपरा, पृष्ठ 224

30. सिंह, काशीनाथ, महुआचरित, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 9

31. पृष्ठ 10

32. पृष्ठ 12

33. पृष्ठ 14

34. पृष्ठ 27

35. पृष्ठ 64

36. पृष्ठकवर

37. डॉ.अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ 387

38. त्यागी, डॉ. मुक्ता, समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी – विमर्श, पृष्ठ – 30

39. सिंह, काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 16

40. पृष्ठ 18

41. पृष्ठ 24

42. वही, पृष्ठ 50

43. वही, पृष्ठ 50

44. उपसंहार उपन्यास के कवर पेज पर

45. वही, पृष्ठ 66

46. वही, पृष्ठ 102

47. वही, पृष्ठ 104

चतुर्थ अध्याय
कथा और लोक संस्कृति : काशीनाथ सिंह की कहानियाँ

चतुर्थ अध्याय
कथा और लोक संस्कृति : काशीनाथ सिंह की कहानियाँ

सामाजिकता

काशीनाथ सिंह जिस सामाजिक परिवेश में रहते हैं वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, संरचना के बदलाव की पड़ताल करते हैं, उन्होंने केवल लिखने के लिए कहानियाँ नहीं लिखी, काशीनाथ सिंह ने अपने समय और समाज के प्रति सावधान होकर पूरे दायित्व के साथ लिखा है। काशीनाथ सिंह की पहली कहानी 'संकट' 1960 में कृति पत्रिका में छपी थी। इसमें पति द्वारा पत्नी को एक उपभोग कि वस्तु समझना दर्शाया गया है। उसमें स्त्री चेतना का मुखर रूप देखने को मिलता है। मधुरेश काशीनाथ सिंह की कहानियों के विषय में कहते है कि "काशीनाथ सिंह की कहानियाँ पढ़ने के दौरान शक्ति और उर्ज संपन्नता सक्रिय आदमियों के बीच होने का एहसास हमेशा बना रहता है।"[1]

वैश्वीकरण के पश्चात लोगों के जीवन में बहुत तेजी से परिवर्तन देखने को मिलता है। यह समाज अर्थ केंद्रित हो गया है जिसके पास धन है, प्रतिष्ठा है, वैभवशाली हैं, वह समाज में सबसे महान और सम्मान का अधिकारी समझा जाता है। यही कारण है कि लोग आज अर्थ को प्राप्त करने की होड़ में अंधे हो गए हैं। हत्या, घूसखोरी, चोरी इन सभी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला है। कविता की नई तारीख' कहानी में सानू धन संपन्न व्यक्ति है, वह समाज में सम्मान प्रतिष्ठा पाने के लिए रिश्वत लेता है और वह धन संपन्न लोगों के साथ अपना संबंध भी रखता है। सानू अपने ऑफिस में आए हुए एक व्यक्ति के बारे में कवि जी से कहता है "देर तक सोचने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा भाई साहब! कि पैसा बड़ी चीज है। लोभ या लाभ अपने भाई को भी नहीं पहचानता– जाति तो दीगर चीज है।"[2] सानू की पत्नी रेखा धन को ही सब

कुछ मानती हैं वह कवि जी की पत्नी से कहती हैं आपने नया घर बनवाया या वही हैं मुझे लगा कि अब पैसा हो गया होगा तो नया घर बन गया होगा। रेखा और सानू अर्थ अर्जित करने के चक्कर में धीरे–धीरे अपनों से और सामाजिकता से दूर होते दिखाई दे रहे हैं। यह कहानी दो अलग अलग पृष्ठभूमि, विचार एवं परिवेश वाले लोगों के बीच तनाव की स्थिति देखी जा सकती है। दोनों पक्षों में विषमता देखी जा सकती है। यह कहानी कई फलक को लेकर चलती है। कवि शानू के घर की शान शौकत के बारे में बताते हैं कि जो इनका भव्य मकान बना है वह सब घूस के माध्यम से बना हुआ है। शानू कवियो को नीची निगाह से देखता है और कहता है कि "सेठों के सम्मान के कवियों द्वारा सम्मान कहीं बड़ी चीज है – जो हर हालत में बड़ी आप यकीन कीजिए भाई साहब..।"[3]

पूँजीवाद का सबसे ज्यादा प्रभाव मध्यवर्ग पर पड़ा। 'कविता की नई तारीख' कहानी में दो मध्यवर्गीय परिवार एवं अलग अलग परिवेश की कथा है। कवि जी जिनकी आमदनी सीमित होने के कारण बेहतर जीवन जीने में असक्षम है। वह जब पत्नी से कहते हैं कि खाओ सब कुछ भूल जाओ, हम लोग यहाँ मन हल्का करने आये हैं। पत्नी कहती है कि "मैं तुम्हें उन सारी सुविधाओं की तरफ ललचाई आँखों से ताकते हुए देखती हूँ तो सोचती हूँ – बुरा न मानना मेरी बात का – सोचती हूँ कि कहीं इनके खिलाफ तुम इसलिए तो नहीं थे कि ये दूसरों के पास क्यों है, तुम्हारे पास क्यों नहीं?"[4] पूँजी से व्यक्ति में अहंकार एवं संकुचित मानसिकता का विकास होता है, वह सिर्फ अपनों के बारे में सोचता है सामाजिक सरोकार एवं सामाजिक मूल्य को भूल जाता है।

कहानीकार अपने समाज का यथार्थ प्रस्तुत करता है। 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' कहानी में शौक साहब अपने खिड़की से राह चलते हुए लोगों के ऊपर पान खाकर पीक मारते हैं, उनका निशाना बहुत पक्का रहता है। जो

भी व्यक्ति नया कपड़ा पहन कर आता उसी के ऊपर वे पीक मारते और जो शौक साहब को गाली देता उसको पैसा, कपड़ा और कुछ उपहार मिलते। हमारे समाज के बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो बिना कुछ किए सुख पूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं। सुखपूर्वक जिंदगी जीने और मुफ्त में पाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। शौक साहब के पान से भरे पीक का लोग इंतजार करते रहते हैं ऐसे समय में एक मरियल सा नौजवान आता है जिसके ऊपर शौक साहब पीक मारते हैं वह बार–बार बच निकलता है। वह किसी लालच से नहीं गया था वह उस चीज का विरोध, उस व्यवस्था का विरोध एवं खंडन करने गया था जिसके लोग आदी होने लगे थे। कहानीकार नौजवान को सदी का सबसे बड़ा आदमी मानता है।

'अपना रास्ता लो बाबा' कहानी में लोग अपने माता – पिता, परिवार, गाँव, अपनी जमीन को लोग भूलते जा रहें हैं। जब लोग धन के पीछे भागने लगते हैं तो उन्हें रिश्ते– नाते, परिवार, समाज से कोई मतलब ही नहीं रह जाता है और संवेदना भी खत्म होती जा रही है। बेचू बाबा गाँव से शहर में दवा करवाने के लिए आये थे। अगर बेचू बाबा को दवा करवाई जाती तो बच जाते लेकिन ये उन्हें बेमतलब का आदमी समझकर दस रुपये की दवा दे कर उनके जीवन को खत्म कर देता है। वह सोचता है कि अगर बाबा को दवा करवा दिए बाबा ठीक हो गए तो गाँव मे जाकर हमारे बारे में बताएंगे कि हमारा भतीजा शहर में रहता है। वे दवा दिलवाया हम ठीक हो गए और इस तरह पूरा गाँव ही यहाँ आ जाया करेगा। दवा करवाने या घूमने ही। देवनाथ इन सभी चीजों को बेमतलब का समझता है, वह सिर्फ अपने बारे में अपने पत्नी और बच्चों के बारे में सोचता है। बेचू बाबा जब गाँव से आते हैं तो किस व्यवहार और स्नेह से बात करते हैं "बचवा! देऊ! तू ही है न। सपना हो गया तू। अरे, अपना गांव घर है। बाप दादा की निशानी है। कोई दूर भी नहीं गया है। कभी कभी तो आया कर। घूम – फिरकर वहीं आयेगा, बताए देते हैं।"[5]

जैसे जैसे व्यक्ति पूँजीवाद से जुड़ता जाता है वैसे वैसे संवेदनाओं का अभाव ,मानवीय मूल्यों का विघटन, सामूहिकता का अभाव, परिवार का विघटन, लोकसंस्कृति से विमुखता दिखाई देने लगता है।

राजनीतिक चेतना

'जंगलजातकम' कहानी में काशीनाथ सिंह ने मनुष्य और जंगल के बीच संबंधों का जिक्र किया है। उपनिवेशवाद और औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप जहां एक तरफ हम सुख सुविधाओं की ओर अग्रसर होते हैं। वहीं दूसरी ओर हम उनका दोहन करते हैं, जो हमे जीवन देता है,जैसे – औषधि, कंद मूल फल, लकड़ी और भी न जाने कितने रत्न दिए हैं। लेकिन आज हम मनुष्य जंगल को नष्ट कर रहे हैं।

"स' इलाके में एक जंगल था। ढेर सारे जंगलों की तरह लंबा चौड़ा... आम, महुए, बबलू, नीम, शीशम, सेमल, पलाश, चिलबिल, बरगद, बांस और ढेर सारे पेड़ो की बस्तियां। इनकी अपनी दुनियां थी, अपने मजे थे। ये लोग बारिश में नाचते थे, बसंत में गाते थे, हवा में झूमते थे। एक दूसरे से बेहद प्यार था और मुसीबत में एक दूसरे की मदद की भावना। कभी दुबली पतली गरीब लतरों और बेलों की मदद पेड़ों ने की थी और पेड़ों के तनों की झाड़–झंखाड़ों ने।"[6] ऐसे ही सुखी जीवन जी रहे थे। औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप जंगलों में कारखाने, और कंपनियां लगने लगी। घामोच कहता है "बहादुरों! यही वह बस्ती है जिसे हमें उखाड़ना है, खत्म करना है। हमें मनुष्यों के लिए मिल खड़ी करनी है, कारखाने बनाने हैं, कोयले की खान खोदनी है। ये निहत्थे पेड़, झाड़–झंखाड! इनके लंबे चौड़े आकार से डरने की जरूरत नहीं। हमें जल्दी ही इनके वजूद को मिटा देना है...।"[7]

जंगल के कटने से प्राकृतिक संतुलन असंतुलित हो जाता है। जंगल के कटने से बहुत सारे जीवों के आवास छिन जाते है, हम शुद्ध हवा लेते हैं

उसकी भी कमी होती है। और कारखाने वगैरह से वहाँ का जनजीवन दुष्प्रभावित होता है। यह कहानी एक प्रतीक रूप में है पेड़ के रूप में मनुष्य को देखा जा सकता है जिस का शोषण और दमन होता है और मनुष्य अपने स्थिति और अस्मिता की लड़ाई लड़ते हैं।

काशीनाथ सिंह नक्सलबाड़ी आंदोलन से भी प्रभावित थे इसकी उपज इनकी कहानी 'सुधीर घोषाल' है। कहानीकार उस समय वहां मौजूद थे जब पहली बार मिल मजदूरों ने विरोध किया था। मिल प्रबंधक कहता है "पहाड़ी वाली खदान के लेबरों ने जुर्रत की है। पहली बार जुर्रत की है। शाम को एक्सीडेंट में एक लेबर मरा और अब वे जुलूस ला रहे हैं। हम उनका कहना नहीं मानेंगे तो बाण चलाएंगे, बल्लम और गॅड़ासे भाजेंगे। कजा आई, मर गया। तो पहली बार! हमारे यहाँ ऐसा नहीं हुआ था। समझाने बुझाने पर मान जाते थे। अदब से रहते थे लेकिन जुलूस, गंडासा, क्रांति यह सब क्या है? आप उधर रोज जाते हैं शाम को। आप कुछ जानते होंगे इसके बारे में।"[8] कहानीकार से मिल प्रबंधक डर गया था कि कहीं यह व्यक्ति ही तो आंदोलन को चालित नहीं कर रहा है इसलिए लेखक को वहाँ से हटा देता है।

प्रशासक के घर में सुधीर घोषाल रसोईयां बनकर रहता है। वह मजदूर भाइयों का बदला लेने के लिए इनके घर पर रहता है। सुधीर लेखक से मिल प्रबंधक के बारे में कहता है "इहाँ से पहले ई सिंगरौली में था – कहीं दक्खिन में। सो, ई दस लेबरों को जिंदा आग में भून दिया। और भी बहुत बहुत अत्याचार किया... बाकी हम भाईबंध हाय, लेबर हाय!.. हम जिंदा नेईं छोड़ेगा इसको। हम जाने नईं देगा इसको।"[9]

इस कहानी में मजदूर वर्ग और प्रशासक के बीच संघर्ष दिखता है। मजदूरों के साथ अत्याचार देखा गया, इससे यह समझ जाना चाहिए कि बिना लड़े हमें हमारे हक नहीं मिल सकते और न ही आजादी। मजदूर संगठन में शक्ति होती है, जिसका एक दृश्य देखने को मिलता है।

कहानीकार 'मीसाजातकम' कहानी को पौराणिकता के रंग में रंग कर समकालीन परिदृश्य सामने रखते हैं। इस कहानी से आपातकाल और उत्तर आपातकाल के परिदृश्य को समझा जा सकता है। उस समय किसी को भी बंदी बना लिया जाता था बिना किसी अपराध के। इस कहानी का प्रमुख पात्र पोट्टपाद है। बिना किसी अपराध के ही उसे बंदी कर लिया जाता है और कहा जाता है यह सड़कों पर गंदगी कर रहे हैं। जब यह आरोप निराधार सिद्ध हो जाता है तो पोट्टपाद छोड़ दिया जाता है। पोट्टपाद को पुनः बंदी कर न्यायाधीश के सामने उपस्थित किया जाता है। और कहा गया कि पोट्टपाद कहते हैं कि "शिवदत्त अत्याचारी है, भ्रष्ट है, पतित है, बेईमान है आदि–आदि। उसके सिंहासन को उलट दो विद्वान न्यायाधीश जानते हैं कि विधि ग्रंथों में ऐसे अपराध के लिए एक ही दंड विधान है – प्राणदंड। इसलिए हे महाराज, पोट्टपाद को ऐसा दंड दे कि राज्य में कोई भी महाराज के विरुद्ध सिर न उठा सके।"[10] इस तरह पूरे देश में किसी को भी दोषी बनाकर बंदी कर लिया जाता था।

'तीन काल कथा' कहानी तीन खंडों में विभक्त है, अकाल, पानी और प्रदर्शनी। 'अकाल' खंड में अकाल पड़ने के कारण वहाँ भुखमरी, गरीबी, बेबसी, लाचारी दिखाई देती है। इसमें एक परिवार की कथा है जिसमे आदमी कहीं से दस रुपए लाता है और पत्नी को देता है कि शाम तक मुझे खाना चाहिए। पत्नी बच्चे से कहती है कहीं जाना नहीं हम आ रहे हैं तो हम लोग मार्केट चलेंगे। लड़का नोट से खेलता हुआ फाड़ देता है, शाम को आदमी घर आता है और कहता है खाना लाओ। पत्नी सारी बात बताती है, वह आदमी जो भूखा प्यासा था वह बोलता है कि "अगर कोई मेरे पास आया तो उसे कच्चा खा जाऊंगा।"[11] बच्चे को मार देता है क्योंकि गरीबी भुखमरी के कारण उसे कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

'पानी' खंड में निठोहर नामक व्यक्ति भूख से परेशान होकर आत्महत्या करने के लिए कुएं में कूद पड़ता है लेकिन वह निकलता नहीं। अंत में सत्तू पिलाकर निकालने की कोशिश करते हैं, वह रस्सी गले में डाल लेता है और मर जाता है। 'प्रदर्शनी' खंड में वह इलाका सूखाग्रस्त है, अकाल पड़ा है जहां प्रधानमंत्री का रैली होना है। उसके लिए प्रदर्शनी में पचास कंगाल जुटाए जाते हैं। प्रधानमंत्री आती हैं मौन भाषण देकर चली जाती हैं। और जो कंगाल थे उन्हें जंगल में पहुँचा दिया जाता है। प्रधानमंत्री पत्रकारों के सामने कहते हैं कि "हम दृढ़ता, निश्चय और अपने बलबूते पर ही इसका मुकाबला कर सकते हैं।"[12] नेताओं की यही दशा है कि वह गरीबों के बीच मात्र वोट लेने के उद्देश्य आते हैं।

'वे तीन घर' कहानी में एक नेता जो शुरुआती दौर में हरिजनों और गरीबों के हित के लिए लड़ा। बाद में उसे लालच और ठाकुरों ब्राह्मणों के लोगों के बीच बैठने में गर्व अनुभव करता है। और अपने ही समुदाय को भूल जाता है। नेता बनने के बाद अपना बनाने में मशगूल हो जाता है जनता का ख्याल ही नहीं रहता।

वर्तमान में हमारे देश में बेरोजगारी की समस्या देखने को मिलती है। युवा वर्ग देशभर भ्रमण कर डालता है सिर्फ रोजगार के लिए। 'मुसईचा' कहानी का विषय भी रोजगार की समस्या पर केंद्रित है। मुसईचा नौकरी पाने के लिए किसी की आँख फोड़ देना और किसी की नौकरी पाने के लिए उसकी मृत्यु की कल्पना करना। युवा वर्ग कितनी बुरी मनः स्थिति से गुजर रहा होगा, जो यह सब करने को मजबूर है। कहानीकार वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अविश्वास प्रकट करते हैं। अंत में भीड़ में नेता के पीछे मुसईचा आते हैं और कहते हैं "साथियों, मेरी जिंदगी के बेहतरीन दिन... कभी वापस न आने वाले दिन रोजगार की तलाश में खत्म हो गए। आपस की छीना झपट में। जैसे कि तुम्हारे – जैसे कि तुम्हारे हो रहे हैं।... मैं तुम्हारे

लिए–तुम सबके लिए षड्यंत्र का सबूत हो सकता हूँ जिसे जनतंत्र कहते हैं।"[13]

'लाल किले के बाझ' कहानी में जादू नामक पात्र जिसकी शादी उसकी इच्छा के विरुद्ध की जाती है। वह शादी में दहेज प्रथा का विरोधी है लेकिन जब सुबह सभी सामानों को देखने पर नाराजगी व्यक्त करने के साथ साथ संतोष भी होता है, कि चलो ठीक ही हुआ यह बाइक आंदोलन करने के काम आएगी। यह जादू दोहरा चरित्र का व्यक्ति है एक तो वह आंदोलन चाहता है लेकिन वह क्रांति में खुद शामिल नहीं होता है। बार–बार उसके मन में आता है कि इस युग में कोई लेनिन क्यों नहीं है। पुनः सोचता है कि लेनिन भी परिस्थितियों के उपज थे। जादू जब अपनी बहन के घर गया है वहाँ पर वह उस नौकर के हक की बात करता है "मैं तो कहता हूँ कि ठाकुर साहब का सारा आबा काबा तुम्हारी, तुम जैसे ढेर सारे लोगों की मेहनत पर खड़ा है। तुम्हें पता नहीं चला और तुम्हारी सारी पीढियाँ, सारे पूर्वज इन हवेली की दीवारों में चुन दिए गए हैं। तुम तुम्हारी बुद्धि, शरीर, आत्मा सब कुछ दीवारों के भीतर कैद है, जब तक यह नहीं रहेगी, इन्हें नहीं तोड़ा जाएगा तब तक यह मुक्त नहीं होगा। और इन्हें तोड़ेगा कौन? कौन तोड़ेगा इन्हें? ये ही मजबूत हाथ, भारी पंजे... कुदाल और फरसे खेत में नहीं, इसकी नींव चलेंगे तब।"[14] वह मजदूरों के हक की लड़ाई की बात करता है, और कहता है कि बिना लड़े हक नहीं मिलने वाला है।

राजनीति में आने के बाद लोग स्वार्थी और लालची हो जाते हैं, अपने अधिकार पर घमंड होने लगता है। वह मनमाने ढंग से अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं इन सब समस्या को केंद्र में रखकर 'मानवीय होम मिनिस्टर के नाम' कहानी लिखी गई है। इस कहानी में नेताओं के साथ–साथ सरकारी कर्मचारी का भी पर्दाफाश किया गया है। सरकारी कर्मचारी कैसे गाँव के गरीब अशिक्षित लोगों से पैसा लेती है, शोषण करती है। इसमें प्रत्येक स्तर पर घूस,

दलाली का एक लंबा सिलसिला चलता रहता है किसानों की समस्या को देखते हुए गाँव के ही एक शाम प्रसाद मौर्या हैं जो किसानों के नेता के रूप में चुने जाते हैं वह बाद में इन्हीं किसानों से नहीं मिलना चाहते। वह लोभी और स्वार्थी व्यक्ति हो गए हैं। जनता से जब नहीं मिलते तो जनता करती है "हुक्म तीन घंटों से आपको ढूंढ रहे हैं" "कभी यहाँ कभी वहाँ। यहाँ से छिपे बैठे हैं और ऊपर से मक्खी मार रहे हैं। इस तरह क्या घुट रहे हैं, आप समझते हैं हम डर जाएंगे।"[15] जब जनता उनका चुनाव की है तो उन्हें उतार भी सकती है। ऐसे नेता और राजनीति वर्तमान समय में भ्रष्ट हो चुके हैं

स्त्री चेतना

काशीनाथ सिंह ने नारी की कई रूपों एवं उनकी समस्याओं को चित्रित किया है। इनकी कहानी 'संकट' में नारी को मात्र घरेलू गुलाम समझना और उसे सिर्फ काम इच्छा की पूर्ति करने वाली वस्तु समझना इस पर प्रहार किया गया है। राघो आर्मी से छुट्टी में घर आया हुआ है। पत्नी से दैहिक सुख न मिलने पर सभी से नाखुश है, उसे पिता बनने की कोई खुशी नहीं है।, उसकी पत्नी को बच्चा हुए आठ ही दिन हुए हैं। राघो को शारीरिक सुख चाहिए होता है जो न मिल पाने की वजह से सभी से नाराज है। जब सभी मित्र राघो को समझाने के लिए आते तो वह कहता है कि "अगर इस साले बच्चे को होना ही था, तो क्या यह दो चार महीना आगे पीछे नहीं हो सकता था?..उसे मेरी छुट्टी में ही होने की क्या जरूरत थी?"[16]

हमारे समाज में सिर्फ पुरुषों को ही सभी प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त है स्त्रियों को क्यों नहीं? स्त्री को बोलने का हक नहीं, उसे हँसने का हक नहीं, उसे किसी से बात नहीं करनी है, उसे किसी अन्य पुरुष से बात नहीं करनी, जबकि पुरुष के लिए ऐसा नियम नहीं है वह भी स्त्री से बात कर सकता है। लेकिन यदि पत्नी किसी पुरुष से बात करे तो उसे प्रताणित किया जाने लगता है। राघो की पत्नी को छींक आ जाती है तो राघो बहुत गुस्सा होता है वह

कहता है "जो औरत आज मेरे सामने तीन बार छींक रही है, वही कल दूसरे के सामने कुछ भी कर सकती है"[17] पुरुष की मानसिकता पर काशीनाथ सिंह गहरी चोट करते हैं राघो की पत्नी हँस देती है तो उस पर नाराजगी है "जो औरत मेरे सामने जरा सी हँस सकती है वही कल तुम्हारे सामने कुछ भी कर सकती है"[18] स्त्रियों का जीवन कठिन भरा होता है माहवारी, बच्चे को जन्म देना और उनका पालन पोषण करना सब उन्हीं के ऊपर होता है। एक स्त्री जो महावारी या नव प्रसूता हो जो पति की कामेक्षा को पूर्ण न करें तो पुरुष उसे पीटता है गालियाँ सुनाता है असली संकट स्त्री है। वह पुरुष से माहवारी या नव प्रसूता के समय अगर संबंध न बनाती है तो पति घर से बाहर कर देता है या मारता पीटता है। वहीं अगर हां कर देती है तो अपने जीवन से बाहर भी हो सकती है।

'चायघर की मृत्यु' कहानी एक विधवा के जीवन की कठिनाइयों एवं उनके प्रति समाज के भेदभाव को चित्रित करती है। यह कहानी फ्लैशबैक में चलती है आज भी हमारे समाज में विधवाओं को लेकर नजरिया ठीक नहीं रहता है। गाँव में विधवाओं के साथ बहुत ज्यादा भेदभाव देखने को मिलता है। इस कहानी में विधवा बुआ पूरे गाँव की बुआ है। वह एक दिन छत से गिर पड़ी, उन्हें देखकर लोग रोने गाने लगे। कोई घर पर नहीं था सब को बुलाया गया। कफन भी आ गया। फूआ कुछ कहना चाहती है लेकिन आवाज नहीं निकल पा रही। लोग उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे, लोग धीरे–धीरे अपने घर जाने लगे। फुआ तीन या चार दिन में ठीक हो जाती है उनसे किसी से बात नहीं करता। कोई रिश्तेदार आता है तो वह सबका पांव छूता है लेकिन फुआ का नहीं। उन्हें बहुत तकलीफ होती है। "फुआ सोचतीं और सुखी आंखें, भीगी होने की उम्मीद में, पोछती जाती। वे निश्चय करती कि उन्हें मर जाना चाहिए"[19]

फुआ लगभग हर महीने मरती, साँस फूलती, शरीर गर्म हो जाता। गाँव वाले इकट्ठे हो जाते। धीरे–धीरे गाँव वाले अब कम आने लगे। "लोगों का कहना था कि फुआ मरती नहीं, सबको तंग करने में मजा लेती हैं। और फूआ से पूछा जाता तो उदास हो जाती। उनकी आँखें डबडबा आती। उनके नथने फड़क उठते। और वे सहसा आंचल से मुंह छिपाकर बिलक पड़ती। उनकी पीठ, जिस पर कफन वाले कपड़े की कुर्ती थी, देर तक हिलती रहती।" [20]

एक दिन फुआ मर जाती हैं गाँव वालों को लग रहा था कि मरी नहीं है, वह फिर से उठ जाएंगी। उस रात बहुत बारिश हो रही थी। लोग भीगते हुए 15 मील पैदल ही चले चले गए। स्मसान घाट पर भी लोगों को यह शंका थी कि वह उठ कर बैठ न जाए "हम खामोश थे। ऐसा नहीं था कि फूआ के मरने से दुखी थे। हमारी चुप्पी कुछ अजीब सी थी। शमशान की चुप्पी से बिल्कुल भिन्न। हममें से हर व्यक्ति आतंकित था और एक दूसरे से आँखें बचा कर लाश को देखना चाहता था। सबको आशंका थी कि किसी समय लाश हिल डुल सकती थी, बांस घिसट सकतें हैं और फुआ टिकठी पर बैठ सकती हैं"[21] "काशीनाथ जी की बहुत बड़ी विशेषता है – भ्रष्ट परिवेश के साथ समझौता न कर पाना। वे बड़ी सहजता से बहुत गहरी बात कह जाते हैं। यही सहजता उनकी भाषा में भी है जो अपने आस पास का जीवन से भी बेहिचक ले ली गई है"[22]

बारिश हो रही है लोग शव का अंतिम संस्कार करने में लगे हुए हैं शव में आग लगा दी गई, लकड़ी जलने लगी "और फिर लाश का जलना... गर्म, काली और सिलसिली बुंदों का चूना, हड्डियों का चटखना, चटखते जाना और फिर सिकुड़कर सलाख की तरह लाल होना, गूथे आटे की तरह लाश के उस अवशिष्ट को आंच के बीच लठ्ठे से ठेलते जाना... मुझे हमेशा लगा और आज भी लगता है कि घाट पर जिसे हमने जलाया था, वह लाश नहीं थी।"[23]

यह कहानी विधवा स्त्री के नारकीय जीवन को चित्रित करती है उसे किस प्रकार उपेक्षित किया जाता है, लोग सामने नहीं पडना चाहते, उनसे कोई अच्छे से बात नहीं करना चाहता, लोग उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

संबंधों का बदलता स्वरूप

आधुनिक समय में सामाजिक संबंधों में बड़े पैमाने पर बदलाव हो रहे हैं। रिश्ते नातों का स्थान अर्थ ने ले लिया है। लोग आगे बढ़ने बड़प्पन दिखाने शोहरत दिखाने में मशगूल हैं। हमारे समाज, विश्वविद्यालय देश में क्या हो रहा है इससे बेखबर हैं। इन्हीं संबंधों के विघटन को काशीनाथ सिंह ने अपनी कुछ कहानियों में दिखाया है।

माता पिता, भाई–बहन, पति पत्नी और परिवार समाज के लोगों से किस तरह संबंध टूटता है कहानीकार दिखाने का प्रयास करते हैं। 'अपना रास्ता लो बाबा' कहानी में बेचू बाबा दवा कराने शहर में आए। इन का भतीजा देवनाथ शहर में रहता था। देवनाथ को अपने बेटों से बढ़कर माना, पाला पोसा था लेकिन देवनाथ अपना धन और समय और परेशानी से बचने के लिए उन्हें मौत के मुंह में धकेलने की कोशिश करते हैं। बेचू बाबा अपनी परिस्थिति के बारे में कहते हैं "अगहन कार्तिक से कहता आ रहा था सुदामा से की चलो,अस्पताल दिखा दो। कोई एक दिन बस चले चलो। किसी के लिए उसे मौका नहीं।उसकी मेहर ऐसे–ऐसे बिंग बोलती है कि चोके से बगैर खाये उठ जाना पड़ता है।"[24]

आज के लोग मात्र अपनी दुनिया शोहरत, बेटा, बेटी, पति पत्नी को ही सुखी बनाने की चिंता करते है। अपने माता–पिता या बूढ़ों की कोई चिंता नहीं। देवनाथ कहता है " सारी जिंदगी और सारी दुनिया और सारा जमाना तुम्हारे सामने पड़ा है और तुम एक बेमतलब के बुड्ढे को लेकर मुँह लटकाए बैठे हो। "[25] जो लोग अपने माता पिता के साथ जैसा व्यवहार करते हैं उन्हें

भी लगभग वैसा ही व्यवहार उनके बेटों से मिलता है। ऐसी ही एक कहानी 'कविता की नई तारीख' है जिसका फलक बहुत विस्तृत है। वैश्वीकरण का भारतीय जन जीवन को वह भी मध्यवर्गीय जीवन को ज्यादा प्रभावित किया। इस कहानी के पात्र सानू और रेखा जो एक बड़े पूँजीपति के रूप में गिने जाते हैं। इनके पास धन, गाड़ी, नौकर, बंगला सब कुछ कर लिया है। इनके यहाँ रेखा की बहन के पति और बच्चे आए हुए हैं। जो एक भी दिन नहीं बीत पाया कि वह घर जाने को कहने लगे तथा कवि और उनकी पत्नी का भी मन यहाँ से उब गया था। जब कवि जी टिकट कटा कर आते हैं और जाने की एक दिन पहले की घटना है कि सानू और कवि दोनों लोग शराब पीते हैं और बोलते बोलने लगते हैं कि आखिर क्या बात है कि आप आए थे, काफी दिनों के लिए, लेकिन जाने को तैयार हो गए हैं। मुझसे जो हो सका वह करता रहता था समय से छुट्टी लेकर आ जाता था कि आप अकेले होंगे। रेखा भी छुट्टी लेकर चली आती थी ताकि आप लोगों का आवभगत हो सके। उसके बावजूद आप लोग जा रहे हैं। ऐसे ही पिताजी को लाए थे कि हम लोगों के साथ रहेंगे लेकिन वह 7 दिनों में ही चले गए। सानू कहता है "पिताजी से मैंने अनुमान लगाया कि शायद मैं इन लोगों से ढंग से बात नहीं कर पाता हूँ– शायद यह लोग अधिक से अधिक साथ चाहते हैं, मुझसे बतियाना चाहते हैं।"[26] सानू कहता है कि पिता से मैं रोज 15 मिनट बात करता था नौकर को हमेशा उनकी देखरेख के लिए लगा दिया फिर भी नहीं रुके। माताजी आई वह भी यहां से चली गई भाई आया कहा कि दुबारा आएंगे लेकिन वह भी कभी वापस नहीं लौटा। एक प्रसंग और भी देखने को मिलता है रेखा अपनी बहन से बात करते हुए कहती है कि बच्चों को अपने पिता के पास भेज देंगे। कवि की पत्नी रेखा कहती है कि पिता कि तुमने हाल खबर नहीं पूछी। लिखा करती है कि कैसे हैं वह और बोल दीजिएगा कि "एक बार यहाँ भी आयें!...भूलना नही प्लीज!यह भी कह देना कि हम उनसे बहुत नाराज हैं।" रेखा कहती है कि

बोल देना कि अपने नातियों को भी लेते जायें।" पत्नी रुककर बोली कि "रेखा, तुम्हे मालूम है कि उन्हें गुजरे हुए आज सात महीने हो रहे हैं।"[27]

इस कहानी में लोग कैसे धन अर्जित करने में लगे हुए हैं उन्हें लगता है कि पैसे से ही रिश्तों को बनाया जा सकता है। यही कारण है कि माता पिता, भाई बहन,दोस्त कैसे दूर होते जा रहे हैं।

'आखिरी रात' कहानी में स्त्री पुरुष के संबंध टूटते नजर आ रहे हैं। एक स्त्री शादी के बाद पहली बार अपने माइके जा रही है। जाने के एक दिन पहले रात में पति पत्नी को प्यार करना चाहता है। बातचीत के सिलसिले में पत्नी पति से कहती है कि पहली बार जा रहे हैं, मम्मी को और वहां छोटे–छोटे बच्चे हैं उनके लिए कुछ लेते जाऊं। पति तुरंत डाट पड़ता है, दोनों लोगों में खामोशी छा जाती है। पति अंत में कहता है कि " यदि यह प्रश्न कुछ समय के लिए टल गया होता – मेरी भीतर जाने कब से यह बात उठ रही है – और मैं पत्नी को पूरी तरह प्यार कर सका होता! कुछ क्षण पहले की तरह और भी तो गए होते...।"[28] पत्नी पति से कुछ सामान लाने के लिए कहती है और दोनों के संबंधों में दरार पड़ जाती है। क्या पत्नी सिर्फ प्रेम करने के लिए ही बनी है? क्या प्रेम के साथ और उसका कोई हक नहीं है? इस प्रकार पति पत्नी के संबंध टूटते नजर आ रहे हैं।

'सुख' कहानी में भोला बाबू नौकरी से अवकाश प्राप्त करके घर आए हैं। वे सूर्य की रोशनी की कोमल गर्माहट एवं उसमें सुकून देखा। उस रोशनी में उन्हें नयापन दिखाई देता है। वह सभी को इस अनुभव एवं सुख का को बताने की कोशिश करते हैं, लेकिन कोई उनकी बात को नहीं सुनता। एवं उनके मन और संवेदना से लोग नहीं जुड़ पाते। बिट्टी की माँ उन्हें खाने को कहती है, वह मना कर देते हैं और कहते हैं "देखो, कहने को यह बीवी है। यह बेटा है। यह बेटी है। यह मकान है। यह जायदात है। ये दोस्त हैं। यह नातेदार हैं। लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं।"[29] पत्नी जब कारण

पूछती है कि ऐसा क्यों बोल रहे हैं? तो वह कहते हैं "जब मेरा दुख कोई नहीं समझ सकता, तो कैसी बीवी और कैसा बेटा।"[30]

'संकट' कहानी में राघो मिलिट्री से छुट्टी में घर आया हुआ है, उसकी पत्नी को बच्चा हुआ है, वह सौर में है। वह पत्नी से संबंध न बना पाने के कारण माता पिता से लड़ता झगड़ता है। वह सबसे नाराज है। वह कहता है कि इस बच्चे को भी अभी होना था, कुछ आगे पीछे नहीं हो सकता था। इस तरह से सभी से संबंध खराब हो गए।

जब व्यक्ति की संवेदना, उसकी बातों एवं विचारों को कोई नहीं समझता है तो वह अपने आप को सबसे अलग पाता है। और सभी से कोई रिश्ता न रखने की बात करता है उसे बहुत दुख होता है कि लोग कितने बदल गए हैं कि मेरी बातों का कोई मूल्य नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मधुरेश, सिलसिला, पृष्ठ 106

2. त्रिपाठी, आशीष, खरोंच,साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 59

3. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, पृष्ठ 384

4. वही, पृष्ठ 370

5. त्रिपाठी, आशीष, खरोंच, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 70

6. वही, पृष्ठ 92

7. वही, पृष्ठ 94

8. वही, पृष्ठ 120

9. वही, पृष्ठ 116–117

10. वही, पृष्ठ 102

11. वही, पृष्ठ 82

12. वही, पृष्ठ 85

13. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, पृष्ठ 200

14. वही, पृष्ठ

15. वही, पृष्ठ 30

16. वही, पृष्ठ 28

17. वही, पृष्ठ 28

18. वही, पृष्ठ 36

19. वही, पृष्ठ 37

20. वही, पृष्ठ 38

21. अग्रवाल, प्रहलाद, हिंदी कहानी सातवां दशक, पृष्ठ 43

22. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, पृष्ठ 39

23. वही, पृष्ठ 315

24. त्रिपाठी, (सं०) आशीष, साहित्य भंडार, इलाहाबाद,2014, पृष्ठ 80

25. वही, पृष्ठ 56

26. त्रिपाठी, (सं०) आशीष, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 63

27. कहनी उपखान, पृष्ठ 25

28. वहीं, पृष्ठ 19

29. वही, पृष्ठ 19

पंचम अध्याय
काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य और लोक संस्कृति : एक आलोचनात्मक अध्ययन

पंचम अध्याय
काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य और लोक संस्कृति : एक आलोचनात्मक अध्ययन

वैश्वीकरण के फलस्वरूप जनजीवन बहुत बदलाव देखने को मिलते हैं। आज के समय में लोग गाँव को छोड़ कर शहर में रहना ज्यादा बेहतर समझते हैं, शहर के लोग गाँव के लोगों के रहन सहन को अच्छा नही समझते उनकी बोली भाषा को असभ्य कहकर उनको निम्न दृष्टि से देखते हैं।

गाँव के लोग मानवीय संबंध आत्मीयता से निभाते है ,एक दूसरे का बिना किसी स्वार्थ के सहायता करना, राह चलते हुए अनजान व्यक्ति की भी जरूरत पड़ने पर मदद कर देना ,एक दूसरे का सुख दुख पूछना, घर आए अनजान व्यक्ति को पानी पिलाना, ये सब गाँव के लोगों का स्वाभाविक गुण है। वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के फलस्वरूप सब कुछ बदलता गया। लोग गाँव से शहर की तरफ भागने लगे हैं, अर्थोपार्जन की होड़ में सभी संबंधों का गला घोंटते दिखाई देते हैं। काशीनाथ सिंह इन्हीं समस्याओं तथा समाज के बदलते स्वरूप को चित्रित करते हुए अपने कथा साहित्य के माध्यम से पाठक को संदेश देते हैं।

काशीनाथ सिंह लोक संस्कृति के प्रति गहरी संवेदना रखते हैं। काशीनाथ चंदौली के रहने वाले हैं वह ग्रामीण अंचल से हमेशा जुड़े रहे, उन्होंने ग्रामीण जीवन में हो रहे परिवर्तन एवं मानवीय मूल्यों के विघटन को प्रत्यक्ष देखा है। 1990 के बाद बाजारवाद का वर्चस्व बढ़ा। जिसके कारण किसान और गरीब मजदूरों को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ा। वर्तमान समय में जिसके पास धन है उसे लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं जिसके पास धन नहीं है उसे लोग असम्मान की दृष्टि से देखते हैं। आर्थिक स्थिति

मजबूत न होने पर जीवन यापन करना कठिन होता जा रहा है धन संचय की होनड़ मची है "साम्राज्यवादी पूँजीवाद में किसान संस्कृति को किस तरह नष्ट हो रही है आज, हजारों की संख्या में किसान आत्महत्यायें कर रहे हैं। आधुनिकीकरण के चलते गाँवों में होने वाले बदलाव को काशीनाथ सिंह ने 'रेहन पर रग्घू'... चित्रित किया गया है।"[1] 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में सभी संबंध अर्थ केंद्रित है। रघुनाथ अपने बेटे की शादी मैनेजर की बेटी से करना चाहते हैं ताकि उन्हें ढेर सारा धन मिल सके । लेकिन संजय पिता बात नहीं मानता है वह प्रोफेसर की बेटी सरला से शादी की बात करता है, जिसमे वह सफल भी हो जाता है। सरला से शादी के बाद वह अमेरिका चला गया वहाँ दूसरी शादी कर लेता है इन सभी घटनाओं के पीछे मनुष्य की बढ़ती महत्वाकांक्षा एवं विलासितापूर्ण जीवन जीने की लालसा जैसे ही कुछ मुख्य कारण हैं जिस कारण आज का मनुष्य नैतिक मूल्यों और सम्बन्धो की अवहेलना करता चला जाता है

भूमंडलीकरण के इस दौर में व्यक्ति कुंठा, त्रास , घुटन, अकेलेपन जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। रघुनाथ प्रारंभ से लेकर अंत तक कठिन परिश्रम करके अर्थोपार्जन करते हैं, बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाकर, उनको उच्च पद तक पहुँचा देते हैं। रघुनाथ अपने बेटे संजय कीशादी अपने स्कूल के मैनेजर की बेटी से करवाना चाहते हैं ताकि दहेज में अधिक से अधिक धन मिलेगा। लेकिन मात्र अर्थ के पीछे भागने से मनुष्य जीवन की वास्तविक खुशी से दूर ह्यो जाता है ज्यादा पैसा इकट्ठा करने कीहोड़ में संबंध टूट जाते हैं, अर्थ के इसी लालच के कारण रघुनाथ के भतीजे रघुनाथ को घर छोड़ने पर विवश करते हैं व जमीन को हड़पने के चक्कर में रघुनाथ को मारते पीटते हैं। वे लोग तो इतने गिर जाते हैं कि अंत में जाकर अपने पिता समान रघुनाथ को जान से मारने के लिए पैसे देते हैं, ये पारिवारिक विघटन का का उदहारण है।

रघुनाथ की धन लोलुपता जैसी कुप्रवृत्ति उनके बड़े बेटे संजय में स्थानांतरित हो जाती है। संजय प्रोफेसर सक्सेना की बेटी सोनल से धन, जमीन और अपना फायदा देखते हुए शादी करता है जिससे धन पाकर वह कैलिफोर्निया चला जाता है। वहाँ जाने के बाद संजय को धन की और इच्छा बढ़ती चली गई, संजय पुनः वहीं पर करोड़पति की इकलौती बेटी से शादी कर लेता है और सोनल से कहता है कि तुम भी कोई पुरुष मित्र से दोस्ती कर लो। समय के साथ–साथ सोनल भारती नाम के एक पुरुष से रिश्ता बना लेती है।

रघुनाथ जीवन भर पैसा इकठ्ठा करने के बाद उसे अंत में क्या मिलता है, बस दुख ही दुख देखने को मिला। संजय अमेरिका रहने लगा और इसका छोटा भाई एक विधवा स्त्री के साथ रहने लगता है और घर वालों के पूछने पर कहता है कि हम इसके साथ जीवन भर नहीं रहेंगे जब तक नौकरी नहीं लग जाती तब तक इसके साथ हैं।

शहरी जीवन में वह सुख, वह चैन नहीं है जो ग्रामीण जीवन में है। धनोपार्जन मात्र इतना ही करना चाहिए जिससे हमारा जीवन आराम से व्यतीत हो सके। वर्तमान में लोग रिश्तो का कोई अहमियत ही नहीं समझते। उन्हें सिर्फ धन एवं धनी लोगों के बीच अपनी प्रतिष्ठा पाने को प्रयत्न करते रहते हैं। इसलिए वे अपने गाँव माता – पिता, अपने परिवार के सदस्यों को एवं उनकी रहन–सहन से घृणा करने लगता है। काशीनाथ सिंह इन समस्याओं का प्रत्यक्ष रूप से देखने के बाद उसे 'अपना रास्ता लो बाबा' कहानी में चित्रित किए। कहानी का पात्र बेचू बाबा देवनाथ के लिए घर से 30 मील दूर शहर में गुड़ का रस एवं चना का होरहा बनवाकर लाते हैं। बेचू बाबा का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता है, उसे दिखाने के लिए आए थे। लेकिन देवनाथ आज बड़े धनी वर्ग में शामिल हो गया होता है जिससे बेचू बाबा के आगमन से वह नाखुश नजर आता है। और पत्नी आशा से कहते है कि कोई पूछे तो बोल देना कि

हम घर नहीं हैं बाहर गए हैं। बेचू बाबा घर में आते हैं, देवनाथ पत्नी से कहता है कि यह पड़ोस के सुदामा के पिता हैं इन्हें कुछ खिलाओ। आशा बदबूदार मिठाई खाने के लिए लाई और कहती है "पिछले हफ्ते ही तो अगरवाल दे गया था। जाने कैसी भिजवाई कि किसी ने छुआ तक नहीं। महरी ले गई सब। बस यही दो रह गई थी उनके भाग से।"[2] मनुष्य की मानवता एवं संवेदना कितनी मिटती चली जा रही है कि अपने घर के बड़े पिता को खराब, सड़ी गली मिठाई खाने को दिया जाता है। उन्हें इसलिए सड़ी गली मिठाई दी जाती है कि वह गॉव के हैं और वह कभी ऐसी शहरी मिठाई नहीं खाए हैं। जबकि ऐसा कुछ नहीं। वह बेटे और बहू के प्यार को पाकर सड़ी गली मिठाई पर ध्यान न देकर उनके प्यार में खुश हैं।

यह बुजुर्ग व्यक्ति जो बहुत अनुभवी है, वह जानता है कि जब किसी को समस्या या मुसीबत पड़ेगी तो वह आएगा, उसे उसके घर वाले ही सहयोग करेंगे, उत्साहवर्धन करेंगे। बेचू बाबा कहते हैं "बचवा!देऊ ! तू ही है न। सपना हो गया तू। अरे, अपना गाँव घर है। बाप दादा की निशानी है। कोई दूर भी नहीं गया है। कभी – कभी तो आया कर। काम वही देगा। घूम – फिरकर वहीं आयेगा, बताए देते हैं।"[3]बेचू बाबा को इस चकाचौंध वाली दुनियाँ के बारे में पता है कि यह सबको बदल देता है सभी संबंधों को तोड़कर, माता पिता को भूलकर सिर्फ पैसा अर्जित करने में लगा होता है। यही स्थिति 'रेहन पर रग्घू' में है और 'अपना रास्ता लो बाबा' में भी। 'रेहन पर रग्घू' में संजय अमेरिका में चला जाता है, माता पिता की कोई परवाह नहीं है। वहीं छोटा बेटा भी बाहर रहता है इसे भी घर की कोई चिंता नहीं। माता–पिता दोनों अपनी बहू के घर पर रहते हैं जिसमें भी माता अपनी बेटी के घर और रघुनाथ बहू के साथ रहने लगते हैं। रघुनाथ का पूरा परिवार बाजारवाद की चपेट में आ जाता है, पूरे परिवार का विघटन हो जाता है इसलिए बेचू बाबा देवनाथ

को पहले से ही सजग कर दे रहे हैं कि आपका गाँव आपका परिवार और आपने ही काम आएंगे इसलिए कभी–कभी गाँव घर पर आ जाया करो।

काशीनाथ सिंह की कथा साहित्य का फलक काफी विस्तृत है इनकी रचनाओं के केंद्र में स्त्री की स्वतंत्रता, वैश्वीकरण के फलस्वरूप लोक संस्कृति में परिवर्तन, मानवीय संवेदना का अभाव, प्रकृति से लोगों में प्रेम का अभाव, एक समय के बाद सबकी शक्ति क्षीण हो जाती है, ज्यादा धन इकठ्ठा करने के चक्कर में अपनों से दूर, अपनों की हत्या करना आदि समस्याओं को केंद्र में रखकर रचना किए हैं। और भी समस्याओं को लिए है लेकिन हमें मुख्यत लोकसंस्कृति के स्वरूप का अध्ययन करना है।

जब देश में कल कारखाने लगने लगे, तब हमें जीवित रखने वाले पेड़ पौधे भी कटने लगे। जिस पेड़ के सहारे हम वास करते हैं उसी को हम खत्म कर दे रहे हैं। यही पेड़ हमे फल फूल देता है, राहगीरों को ठहरने का स्थान देता है, कंद मूल जैसे महत्वपूर्ण फल खाने को मिलता है। इसके बावजूद भी लोग जंगल को काट दे रहे हैं। सरकार भी आदिवासी लोगों को जंगलों से बेदखल कर दे रही है और रहने के लिए उचित स्थान का मुहैया नहीं करा रही जिससे लोग भूखे मरे जा रहे हैं। कुछ लोग तो आत्महत्या कर ले रहे हैं, क्योंकि ये शहर के जीवन में घुल मिल नहीं पा रहे। वहॉ की भाषा रहन–सहन, खान–पान सब कुछ अलग है और पैसे से ही शहर में आप जीवित रह सकते हैं। जिस तरह से जंगल की कटाई बहुत तेजी से हो रही है अगर इसी तरह होती रहे तो जंगल खत्म हो जाएंगे। और उसमें रहने वाले जीव जंतु भी खत्म हो जाएंगे। 'जंगलजातकम' कहानी में इसी समस्या का चित्रण किया गया है कि जंगल की कटाई व्यक्तिगत फायदे के लिए कर रहे हैं। सरकार इसके बचाव एवं सुरक्षा के लिए कई नियम और कानून बनाए हैं जिससे पेड़ों की सुरक्षा हो सके। लेकिन सरकार जब पेड़ों को कटवा दे रही है तो वहाँ पर पुनः वृक्षारोपण नहीं करवाती। जैसे रोड की चौड़ीकरण के

दौरान लाखों पेड़ काट दिए जाते हैं लेकिन बहुत ही कम पेड़ों का वृक्षारोपण हुआ और जितना किया भी गया था उसकी देखभाल भी नहीं की जा सकी, जिससे वह भी खत्म हो रहे हैं।

मनुष्य के व्यस्त जीवन में समय के अभाव में वह एक दूसरे का सुख दुख का कारण नहीं जानना चाहता। वह अपने आप में खुश रहना चाहता है। वर्तमान समय में किसी व्यक्ति को इतना समय नहीं कि वह अपने आसपास की सुंदरता को पहचान सके। 'सुख' कहानी में इसी समस्या को उठाया गया है। भोला बाबू नौकरी से घर आए थे। कमरे में बैठे हुए थे कि अचानक उन्हें महसूस हुआ कि उनके गंजे सिर पर "जैसे वह किसी नन्हें बच्चे की हथेली हो, गरम और गद्देदार।"[4] इस सूर्य के सुख को पाकर एवं छिपते हुए सुंदरता को देखकर उन्हें आश्चर्य हो रहा था, आखिर में इतने दिन तक इस सुख से, इस सौंदर्य से कैसे वंचित रह गया। भोला बाबू अपने तरह तरह के प्रयास किए कि सभी इस सुंदरता को देखें और समझे लेकिन कोई नहीं समझता। दो बातें स्पष्ट तौर पर सामने आती हैं कि एक तो यह कि व्यक्ति अपने को प्रतिष्ठित करने की होड़ में इतना परेशान है कि वह प्रकृति के सौंदर्य को नहीं समझ पाता। दूसरी यह कि कोई व्यक्ति अपने खुशी एवं सुख के लिए पूरा जीवन न्योछावर कर दे लेकिन बुढ़ापे में उसकी संवेदनाएं एवं भाव को नहीं समझ पाते, चाहे वह कितना भी करीबी हो जैसे माता पिता पुत्र पुत्री आदि।

सत्ता, शासक वर्ग, नेता इन सभी का विरोध काशीनाथ सिंह ने अपनी रचना में बड़ी मुखर रूप से करते हैं। 'सुधीर घोषाल' कहानी में कोल मिल में काम करने वाले मजदूरों पर ज्यादती देखकर प्रशासक के घर में रसोंइया बनकर सुधीर घोषाल प्रशासक की हत्या कर देता है। लेखक भी उस समय वहाँ मौजूद था। लेखक कोल मील में काम करने वाले मजदूरों का हाल खबर लेने जाया करता था। उनके सुख–दुख, उनका रहन–सहन, उनके कष्ट को बहुत करीब से देखा। उनकी अपने कष्ट के गीत होते हैं जो काम करते समय

या कष्ट में गीत गाया करते हैं। मिल का शासक बहुत क्रूर था। कोई मजदूर अगर बीमार पड़ता तो दवा न दिलाता, उनका उपचार अच्छे से नहीं कराता था। जो मजदूर आग में गिर कर मर जाता उसकी शव को उसी तरह आग में ही छोड़ देता था।

काशीनाथ सिंह वर्तमान शासक एवं उसकी निर्दयतापन को देखकर यह बताने की कोशिश करते हैं कि अत्याचार और निरंकुशता ज्यादा दिन नहीं चल सकता। अगर आप किसी के जीवन, भूख, समाज, रोजगार पर चोट मारते हैं,और अत्यधिक शोषण करते हैं वहीं पर कोई भी व्यक्ति अपने हक के लिए आवाज उठा सकता है शासन के विरुद्ध जाकर विरोध करता है, आवाज उठाता है। और वह शासक वर्ग के से मोर्चा ले लेता है। 'अपना मोर्चा' उपन्यास में शासक वर्ग की निर्दयता एवं भ्रष्टाचार दिखाया गया है। शासक वर्ग अपनी गलती कभी भी स्वीकार नहीं करती। वह छात्रों से आकर सीधे बात नहीं करती वरन पीछे से आकर छात्रों के ऊपर लाठी चार्ज कर देता है। काशीनाथ सिंह पुलिस के व्यवहार से नाखुश हैं इस उपन्यास में जब 'मैं' पात्र ऊपर छत के तीसरी मंजिल पर था। उसी समय पी.एस.सी छत पर जाती है, उनसे अभद्र व्यवहार करती है। वह बात बार–बार कहते रहे कि हम यहाँ के प्रोफेसर हैं, बच्चों को पढ़ाते हैं, इसके बावजूद वे लोग पैर से ठोकर मार देते हैं। पी ए सी की क्रूरता तब और भी बढ़ जाती है जब लाठी चार्ज हो रही थी, कुछ छात्र बाउंड्री के दूसरी ओर भागने की कोशिश कर रहे थे उसी समय छात्रों को बेरहमी से पीटा गया कई छात्रों की जान तक चली गई।

'अपना मोर्चा' उपन्यास के अंत में छात्र एकजुट होकर वहाँ के किसान, मजदूर, शोषित वर्ग एवं ग्वाल जातियों के सहयोग से पीएसी को परास्त कर दिए। इस उपन्यास में हमारा ध्यान एक और तरफ आकर्षित होता है कि कोई समस्या किसी एक व्यक्ति की समस्या न होकर सभी की समस्या हो। चाहे वह किसान की समस्या हो, मजदूरों की समस्या हो, शोषित समुदाय

की समस्या हो, तभी सभी अपनी समस्या समझ कर एक साथ आवाज़ उठाएं तो शासक या नेता हमारी बात को संज्ञान में लेंगा। जगदीश नारायण श्रीवास्तव 'अपना मोर्चा' के विषय में लिखते हैं "अपना मोर्चा अब तक लिखे गए हिंदी उपन्यासों में पहला उपन्यास है,जो अपने समय की युवा पीढ़ी के क्रोध को सच्ची और प्रखर अभिव्यक्ति देता है। काशीनाथ सिंह अपने इस उपन्यास के माध्यम से देश की सारी गलाजत को उसकी चिंताओं और कारणों के साथ बेबाक ढंग से पाठक के सामने प्रकट कर देते हैं ताकि वह उस दृ ढ़ता से सोचें और उन्हें बदल देने की राहों पर संगठित होकर चल निकले।"[5]

'लाल किले का बाझ' कहानी में लेखक उच्च वर्ण एवं जमीदारों के शोषण के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है और गरीब, किसान, मजदूरों को अपने हक की लड़ाई के विषय में बताता है, कहता है कि "तो मैं तो कह रहा था कि ठाकुर साहब का यह आबा – काबा तुम्हारी, तुम जैसे ढेर सारे लोगों की मेहनत पर खड़ा है। तुम्हें पता नहीं चला और तुम्हारी सारी पीढ़ियां, सारे पूर्वज इस हवेली की दीवारों में चुन दिए गए हैं। तुम, तुम्हारी बुद्धि, शरीर, आत्मा सब कुछ दीवारों के भीतर कैद है, जब तक यह नहीं ढहेगी, इन्हें नहीं तोड़ा जाएगा तब तक वह मुक्त नहीं होगा।"[6]

बाजारवाद के परिणाम स्वरूप उपजे समस्या मनुष्य को अपने आप में परिवर्तन करने के लिए मजबूर कर देता है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास जो काशी की संस्कृति एवं उनकी भाषा तथा वहां के लोक जीवन के लिए विख्यात है। इस उपन्यास में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति का द्वंद है। धर्म नाथ जो काशी के सबसे बड़े पांडे थे, वह बहुत ही ईमानदार व्यक्ति थे, उनके लिए भक्ति ही सब कुछ है। धर्म की अटूट विश्वास में आस्था रखते थे, लेकिन बाजारवाद की चपेट में आकर अपने आप को बदल दिए। महंगाई इतना बढ़ गई कि बच्चों को पढ़ाने के लिए पैसे नहीं, घर में भी कुछ खाने को नहीं था। अंततः वह अपने आप से समझौता करते हैं और अपने घर में ही अंग्रेजों को

शरण देते हैं प्रतिदिन के हिसाब से उन्हें पैसा मिलने लगता है जीवनचर्या बदल जाता है।

काशी की संस्कृति में गाली बहुत ही मशहूर है काशी के घाट पर जगह–जगह से लोगों का आगमन हुआ और अधिक पैसा देकर वहां के जमीन एवं घर खरीद लिए। जिसके परिणाम स्वरूप अलग–अलग जगह के लोग आए यहाँ की लोक संस्कृति को मिश्रित संस्कृति बना दिए। लोक संस्कृति को भूमंडलीकरण ने अत्यधिक रूप से प्रभावित किया है, पाश्चात्य सभ्यता के रहन–सहन संस्कार को ग्रहण किया गया। हमारी लोक संस्कृति के विघटन का बदलते स्वरूप में पाश्चात्य सभ्यता का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इस उपन्यास में कथाकार काशीनाथ सिंह दलित एवं पिछड़ों के प्रति संवेदना जताई है, और धर्म आडंबर करने वाले के लिए एक बिम्ब दिए हैं कि कर्म करो आज नहीं तो कल तुम्हें भी इसको छोड़ कर आना पड़ेगा।

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में ट्रैक्टर से खेती होने लगती है। मजदूरों को काम मिलना बंद हो गया। यानी जब से पूँजी से विकास की तरफ बढ़े वैसे ही गरीब लोग और गरीब होते चले जा रहे हैं। ट्रैक्टर से पहले जब लोग खेतों में काम करते थे उस समय उनके अपने गीत होते थे। वे समूह में रहकर एक–दूसरे का सहयोग करते थे, लेकिन ट्रैक्टर ने सबको बेरोजगार कर दिया। इसी तरह बड़ी–बड़ी कंपनियों और बड़ी–बड़ी मशीनों के आने पर बहुत लोगों की नौकरी छीनी गई। वर्तमान में मशीन का प्रयोग जरूरी है क्योंकि अगर इसका प्रयोग न करेंगे तो हम विकास के क्रम में कुछ पीछे रह जाएंगे। लेकिन मशीन का आज अत्यधिक प्रयोग हो रहा है जिससे मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा, मानवीय संवेदना खत्म हो रही है।

काशीनाथ सिंह कृत 'महुआचरित' उपन्यास मध्यवर्गीय नारी मन की यथार्थ वर्णन करता है। यह उपन्यास शारीरिक आवश्यकता के साथ–साथ इस मुद्दे को भी उठाया है कि रिश्तो के बिखरने के बाद मन के बिखराव या दर्द

का चित्रण करता है। इस उपन्यास में पुरुष वर्ग की अवसरवादीता एवं मानसिकता को दिखाया गया है। पुरुष अपने लिए हमेशा ऑप्शन रखता है। वह कहीं भी जाए, किसी से भी प्यार करे, लेकिन उसकी प्रेमिका या पत्नी किसी से अगर साधारण तौर पर बात भी कर लेती है तो पुरुष को समस्या होने लगती है।

पुरुष के साथ एक समस्या और भी देखने को मिलती है बेटी के सभी इच्छाओं को पूर्ण करते लेकिन कभी उसको अपने मनपसंद वर चुनने का अधिकार नहीं देते। महुआ खूब मन लगाकर पढ़ाई करती है, पढ़ाई के दौरान उससे बहुत लोग बात करना चाहते हैं, लेकिन वह मन लगाकर पढ़ाई करती रहती है। जब पीएचडी की पढ़ाई पूर्ण हो जाती है, तब महुआ अकेली पड़ जाती है। उसे किसी की आवश्यकता महसूस होने लगती है। वह छत पर जाकर अकेले बात करती रहती है उसी दरमियान महुआ को शारीरिक संबंध आवश्यकता की महसूस होती है। वह दो बच्चे के पिता साजिद के साथ हैदराबाद चली जाती है वहाँ 13 दिन तक साथ रहते हैं। जब शारीरिक आवश्यकता पड़ती है तो वहाँ पर जाति धर्म उम्र कुछ नहीं दिखता। महुआ के हैदराबाद से वापस आने पर वह गर्भ से हो जाती है। यह प्रगतिशील महिला की तरह सोचती है कि मैं अपने बच्चों को जन्म दूंगी, लेकिन क्या यह समाज इसको स्वीकार करेगा? महुआ को भी अपने समाज की मानसिकता को लेकर चिंता होती है। अगर हम बच्चे को जन्म देती हूं तो उसके पिता का क्या नाम दूंगी। हां साजिद ही रख देंगे पुनः कहती है कि हमारा धर्म इन्हें स्वीकार नहीं करेगा। वह यहां तक सोचती है कि मैं इस बच्चे को जन्म देंगी और यह दूसरा कबीर होगा। समाज में हो रहे अंधविश्वास बह्याडंबर, जाति प्रथा, उपेक्षित स्त्री को लेकर विरोध करेगा। समाज में जो भी बुराई, अंधविश्वास रहेगा सब को दूर करेगा। अंततः वह अपने आप मानसिक द्वंद्व को खत्म करने के लिए दवा खा लेती है, एक बच्चा जो पेट में पल रहा था जिसे संसार में

आने से पहले ही समाज के भय से हत्या कर दिया जाता है। हमारे समाज में कितनी विकृतियां है कि हमारा समाज उसे स्वीकार नहीं करता। "स्त्री की संपूर्ण पहचान उसकी अस्तित्व की लड़ाई देह पर आकर अटक जाती है, क्योंकि सदियों से ...यौन शुचिता और पवित्रता के कड़े नियम स्त्री पर लागू हैं।"[7] स्त्री की दमित इक्षा, स्त्री पुरुष संबंध में विघटन, परिवार का अलगाव, स्त्री अस्मिता आदि जैसी समस्या इस उपन्यास में मिलता है।

'कविता की नई तारीख' कहानी काशीनाथ सिंह की महत्वपूर्ण कहानी है। परिवार का टूटना संबंधों की डोर कमजोर पड़ना, पूँजीपति बनने की होड़ में माता–पिता भाई–बहन को भूल जाना, अपने को श्रेष्ठ दिखाना तथा दूसरे को अपने से नीचे समझना घूसखोरी, मिटती मानवीय संवेदना आदि समस्याओं का वर्णन किया गया है। सानू पैसे कमाने की होड़ में इतना व्यस्त है कि वह अपने माता – पिता को समय नहीं दे पाता। भाई से बात नहीं कर पाता। वे लोग उस महल जैसे बड़े घर में नहीं रहना चाहते। सब कुछ छोड़ कर अपने गाँव में रहना पसंद करते हैं। कोई भी माता–पिता पैसे का भूखा नहीं है वह अपने बच्चों का प्यार चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उसके बच्चे उसके पास बैठकर दुख – सुख की बात करें और उन्हें तब बहुत सुकून मिलता है। इसलिए गाँव में रहने वाले माता–पिता जब शहर अपने बेटे के पास जाते हैं वहाँ जाने पर सामूहिकता से एकाकीपन में आ जाते हैं। शहर में जाने के बाद बेटे अर्थ इकठ्ठा करना चाहते हैं, वह माता पिता का थोड़ा भी ख्याल नहीं रख पाते। सानू कहने लगता है कि आखिर पिता के लिए नौकर खाने–पीने की सभी व्यवस्था थी उसके बावजूद वह चले गए।

कवि अपने पत्नी और बच्चों के साथ सानू के यहाँ शहर में घूमने आए थे लेकिन यहाँ आकर ज्यादा समय नहीं ठहर सके। ऐसा नहीं है कि सानू और उसकी पत्नी लोगों को समय न दे पाती हैं। वह समय से छुट्टी लेकर आ जाती थी। अंततः कवि अपने बच्चों के साथ जाने का निर्णय करते हैं। यहां

पर दो संस्कृति, दो परिवेश की टकराहट है। एक तो ग्रामीण परिवेश और दूसरा शहरी परिवेश। ग्रामीण परिवेश से गए कवि, पत्नी और बच्चे थे जिनका रहन–सहन, खान–पान सब शहरी जीवन से भिन्न था। सानू की पत्नी रेखा माता–पिता के बारे में एक भी बार नहीं पूछती कि माता – पिता जी कैसे हैं। कवि की पत्नी के कहने पर कि आपने पिता की हालखबर नहीं ली। उसने कहा कि हां पिता को भेज देना और बोल देना कि मैं नाराज हूँ...। पैसे को एकत्र करने की लालसा ने व्यक्ति को अपने से दूर कर देता है अपने तब याद आते हैं जब कोई मुसीबत आती है इस तरह हमारे समाज में अनेकों परिवर्तन देखने को मिल जाते हैं। यही लोक संस्कृति के विघटन के कारण हैं जो अपनों से सभी दूर होते चले जा रहे हैं।

'उपसंहार' उपन्यास 2014 में आया। काशीनाथ सिंह ने कृष्ण के जीवन की अंतिम दिनों की कथा का वर्णन किया है। उन्होंने इस विषय पर बहुत गहन अध्ययन चिंतन मनन करने के बाद उपन्यास लिखते हैं। इसी चिंतन एवं संघर्ष को देखकर कुंवर पाल सिंह लिखते हैं " काशीनाथ सिंह की कोई भी रचना पढ़ें – कहानी, संस्मरण या आलोचनात्मक निबंध, उसमें एक व्यापक तैयारी और परिश्रम दिखाई देगा। प्रेमचंद और गोर्की उनके आदर्श हैं। जीवन संघर्षों से बचकर कोई अच्छा साहित्य नहीं लिखा जा सकता। काशी की रचनाओं में आज गौर से देखें तो जीवन के विविध पक्ष आपको दिखाई देंगे। उनके पात्रों में जीवंतता है। उनकी भाषा जीवन से जुड़ी हैं, पूरी किताब नहीं।"8

प्रत्येक जगह हमने कृष्ण के जीवन की घटनाओं, उनके ऐश्वर्य शक्ति एवं महाभारत युद्ध में उनके विजय का वर्णन देखा होगा लेकिन काशीनाथ सिंह ने महाभारत के बाद की कथा का वर्णन किया है। जिस द्वारका नगरी के बनने और बिगड़ने की कथा है उसे भी इन्होंने बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया। सभी लोगों का अपना एक समय होता जिसमें व शक्तिशाली होता है, उसे लोग भगवान का रूप मानने लगते हैं लेकिन समय बीतने पर

उनकी भी शक्ति क्षीण हो जाती है। जैसे वर्तमान में जो शासक, प्रशासक हैं वह आज सत्ता में है कल वह सत्ता में नहीं रहेंगे या उनके शक्ति क्षीण हो जाएगी। इसमें कृष्ण को एक साधारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

काशीनाथ सिंह भाषा की नई स्थापना करते नजर आते हैं। जो अन्य लेखकों की भाषा से भिन्न है। भाषा में बनारसी फक्कडपन एवं कथा कहने के देसी अंदाज के कारण कई बार वे कुछ आलोचको की ..... का शिकार हुए। इसी संदर्भ में कमला प्रसाद, संदीप लोटलीकर, से बात करते हुए लिखते हैं– ''काशीनाथ सिंह ने प्रचलित भाषा को तोड़ने का काम किया है। वे लोक जीवन की भाषा लेते हैं। श्लील, अश्लील, भद्र, अभद्र का ज्यादा सोच विचार नहीं करते। जो लोग काशीनाथ सिंह की भाषा पर आक्षेप करते हैं वे गैर रचननात्मक हैं।'' काशीनाथ सिंह की भाषा जीवंतता की भाषा है। जिसे वे लिखते नहीं बल्कि बतियाते नजर आते हैं। इस बदलती दुनिया में काशीनाथ सिंह गाँव देहात के आम जन की भाषा को अनूठे ढ़ंग से प्रस्तुत करते हैं। प्रमोद कुमार पाण्डेय लिखते हैं ''काशीनाथ सिंह का लेखन गाँव –जवार की बोली–वाणी से संचालित होता है। उनकी भाषा में जिन्दगी और जिन्दादिली से बहे हुए भाव अनिवार्य रूप से मौजूद हैं। ग्लोबल दुनिया में उनकी भाषा ग्लोबल नहीं, गर्वीली है। उसमें जीवन हूबहू रूप में मौजूद है जिसमें असल जीवन सांस लेता है। हँसी –मजाक, भदेसपन , व्यंग्य विनोद, टिटकारी, चूहलपनग, गाली–गलौज .....खिलंदडेपन के अंदाज से सारोबार भाषा को अगर असल रूप में न देखा जाए तो लगेगा कि अरे! यह तो किशोरोचित हरकते हैं।, जिन्हें बुढापे में काशीनाथ सिंह अंजाम दे रहे हैं।'' काशीनाथ सिंह की भाषा में ग्रामीणांचल के तत्व बहुतायत पाए जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ शिवचरण कौशिक, पंचशील शोध समीक्षा(बदलता भारतीय समाज और नई सदी के हिंदी उपन्यास), पृष्ठ – 115

2. सिंह, काशीनाथ; कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 पृष्ठ 305

3. वही, पृष्ठ 304

4. वही, पृष्ठ 13

5. श्रीवास्तव, जगदीश नारायण , उपन्यास की शर्त,पृष्ठ 104

6. सिंह, काशीनाथ; कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010,पृष्ठ200

7. त्यागी, डॉ मुक्ता; समकालीन महिला उपन्यासकार में नारी विमर्श, पृष्ठ – 18

8. सिंह, कुँवरपाल; काशी के पास सच कहने का भी एक सलीका है, काशी पर कहन, वर्ष अगस्त 2000(सं) मनीष दुबे, पृष्ठ 120–121

9. दूबे, मनीष संपा०, काशी पर कहन, वर्षा प्रकाशन, 2005,पृष्ठ 479

10. सिंह,कामेश्वर संपा०, सम्बोधन अंक 1–2 अक्टूबर 2012–जनवरी 2013,पृष्ठ 38

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए साहित्य में समाज की समस्याओं का चित्रण अनिवार्य है, लेखक उन समस्याओं विसंगतियों के खिलाफ आवाज उठाता है। समकालीन रचनाकारों में काशीनाथ सिंह एक प्रतिष्ठित रचनाकार हैं तथा इन्होंने बहुत बेहतर ढंग से अपने समाज की जटिल समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इन्होने उपन्यास और कहानी के माध्यम से मानवीय मूल्यों के विघटन की पड़ताल तथा उसके प्रति चिंता व्यक्त करने के साथ–साथ उनके प्रति सजग रहने पर बल दिया है।

आजादी के बाद लोगों का मोहभंग, घुटन, कुंठा आदि के कारण आदमी की संवेदना का चित्रण काशीनाथ सिंह के कथा साहित्य में देखने को मिलता है। जिन सपनों एवं मूल्यों के साथ स्वराज की नींव पड़ी वह सभी झूठी सी मालूम पड़ी, जनता का इसके प्रति आक्रोश भी दिखाई देता है। इनकी पहली कहानी 'संकट' 1960 में प्रकाशित तथा पहला उपन्यास 'अपना मोर्चा' 1972 में प्रकाशित होता है इनके कहानियों में अमानवीय कुरूपता, शोषण, अन्याय आदि का दृश्य मिलता है।

काशीनाथ सिंह की कहानियों का पात्र कोई कमजोर, साधारण, पिछड़ा व्यक्ति दिखाई देता है। 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' कहानी में शौक साहब गली में आते जाते लोगों के ऊपर पिक मारता है , इसका विरोध एक ऐसा आदमी करता है जिसका समाज में कोई हैसियत नहीं है, खाने के लिए तरस रहा है, कपड़े और मकान नहीं है । वह विरोध इसलिए करता है ताकि यह परंपरा तोड़ी जा सके। शौक साहब आजादी के पहले से ही आर्थिक रूप से संपन्न व्यक्ति थे जिससे वे लोगों के ऊपर थूककर यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि यह समाज कितना गिरा और लालची है जो पुरस्कार पाने के लिए कुछ भी कर सकता है, करा सकता है। यह कहानी समाज के ऊपर

तमाचा मारता है। काशीनाथ सिंह इस सोच को एक मरियल से व्यक्ति के माध्यम से बदलने की कोशिश करते हैं । इनकी कहानियों के पात्र मोहभंग, आपातकाल, बाजारवाद, पूँजीवाद की त्रासदी को झेलता हुआ दिखाई देता है।

काशीनाथ सिंह की कहानियों में मोंहभंग के फलस्वरूप उपजे परिवर्तन के कारण लोगों में प्रतिरोध की चेतना दिखाई देती है। यही मोंहभंग कहीं न कहीं आपातकाल की नींव डालता है और इनकी लगभग सभी कहानियों में कहीं न कहीं राजनीतिक संबद्धता दिखाई देती है। पूँजीवाद के फलस्वरूप सामाजिक संरचना ध्वस्त हो रही है। 'कविता की नई तारीख' कहानी में बाजारवाद के कारण मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन तथा टूटती संवेदना, अपनों से दूरी दिखाई पड़ती है। 'संकट' कहानी स्त्री के प्रति पुरुष मानसिकता की सोच को दर्शाती है। पूँजी को प्राप्त करने की होड़ में अपने गाँव, अपने परिवार, अपनी संस्कृति से दूर होते चले जा रहे हैं। 'अपना रास्ता लो बाबा' कहानी इसका प्रमाण है। इनकी कहानियों में लोक की भाषा, लोक के रहन सहन, सामूहिकता, लोकगीत आदि का चित्रण के साथ लोक संस्कृति का स्वरूप दिखाई देता है।

काशीनाथ सिंह का पहला उपन्यास 'अपना मोर्चा'(1972) को प्रथम कैंपस उपन्यास के रूप में जाना जाता है। यह उपन्यास 'भाषा विधेयक विरोध' आंदोलन के रूप में ही नहीं अपितु यह छात्रों के बनने बिगड़ने में शासन, प्रशासन एवं यूनिवर्सिटी की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इस बात को भी दर्शाता है। एक छात्र जो दिन रात परिश्रम करके पढ़ता है और श्रेष्ठतम परीक्षा परिणाम लाता है, परन्तु विश्वविद्यालय कि अनितियों के चलते प्रवेश से वंचित हो जाता है। वही दूसरी तरफ एक नेता का पुत्र है जो अध्ययन में कभी रुचि नहीं लेता है, जिसका परीक्षा परिणाम न्यूनतम है, विश्वविद्यालय में प्रवेश पा जाता है। युवा वर्ग जो देश की शक्ति है, उसकी प्रासंगिकता को लेखक व्याख्यायित करता है। यही युवा वर्ग देश की उन्नति में सहभागिता देता है।

युवा से ही देश और समाज का निर्माण एवं विकास होता है अगर यही युवा वर्ग अपने रास्ते से भटक जाता है तो एक विध्वंसकारी रूप धारण कर लेता है। अगर यह सही एवं नैतिक रास्तों पर रहे तो रचनात्मक कार्य कार्य उन्नति करते रहेंगे। छात्रों के बनने बिगड़ने में शासक प्रशासक का बहुत बड़ा हाथ रहता है। छात्रों के ऊपर धोखे से लाठी चार्ज करा देना उन्हें बेरहमी से पीट देना इनको रास्तों से भटकाना ही है। छात्र पढ़ने आते हैं अपना जीवन सुधारने आते हैं लेकिन उन्हें शासन व्यवस्था परेशान कर देती है, वे दिशाहारा हो जाते हैं। जिससे गलत कदम उठाने को मजबूर हो जाते हैं छात्र किसान मजदूर तथा वहॉ की अन्य जातियॉ एकजुट होकर शासन व्यवस्था के खिलाफ लड़ते हैं और अपनी अस्तित्व और अस्मिता को बचाए रखते हैं। काशीनाथ सिंह सामूहिकता पर बल देते हैं और यही सामूहिकता की भावना ही लोक संस्कृति का प्रमुख तत्व हैं।

'काशी का अस्सी' उपन्यास बाजार में फॅसे समाज का चित्रण करता है। यह उपन्यास बनारस के अस्सी के मोहल्ले के माध्यम से संपूर्ण देश एवं समाज पर पूँजीवाद भूमंडलीकरण के प्रभाव को दर्शाता है। 'काशी का अस्सी' मात्र बनारस का रूपक न होकर सम्पूर्ण देश का रूपक है। बाजारवाद ने समाज पर ऐसा धावा बोला है कि जिन लोगों ने पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को कभी स्वीकार नहीं किया उससे सदैव दूरी बनाए रखी। पर बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव ने ऐसा मजबूर किया कि वह भी पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार करने लगते हैं। अब वे अंग्रेज किराए दारों को अपने घर में रखते है। जिससे बढ़ती महंगाई में धनोपार्जन हो सके। उत्तर भारत की राजनीतिक संरचना तथा जातिवाद, सांप्रदायिकता आदि का वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। राजनेता लोग स्वयं के फायदे के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बुलाकर साम्राज्यवादी शक्ति को बढ़ावा देते हैं। इस कारण से लोग ब्रांड के पीछे भागने लगे, जो साधारण तरीके से ग्रामीण संस्कृति के लोग गेहूँ, बाजरा,

सोयाबीन, इत्यादि अनाज को बाजार में बेचते थे, वह अब नहीं बिकता। हाथ से बुने हुए वस्त्रों के बजाय ब्रांड कपड़े को खरीदना ज्यादा पसंद करते हैं पूँजीवाद के कारण लोगों के रिश्ते, मानवीय मूल्य, संवेदनाएं टूटती नजर आती हैं ।

काशीनाथ सिंह का तीसरा उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' है। जिसे 'काशी का अस्सी' का अगला क्रम माना जाता है। 'रेहन पर रग्घू' वहीं से प्रारंभ होता है जहाँ से काशी का अस्सी समाप्त होता है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन होता है, जिससे लोग पूँजी इकठ्ठा करने की होड़ में आगे आते हैं। काशी के अस्सी में भी नगर को लूटा जा रहा है और रेहन पर रग्घू में भी उस पैसे या धन को इकट्ठा करने के बाद की स्थिति का चित्रण किया गया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व बढ जाने के बाद जो हमारा युवा वर्ग सफलता एवं भोगवादी प्रवृत्ति की तरह झुकता गया। जिसके परिणाम स्वरूप लोगों में संबंधों का अभाव, मानवीय मूल्यों का विघटन, हत्या, बलात्कार, हिंसा, चोरी, डकैती, अनैतिक कार्य इत्यादि दिखाई देने लगे। समाज अपनी संस्कृति से दूर होता जाता है। वृद्ध रघुनाथ अपने बेटों को घर पर रहने के लिए बुलाते हैं तो बेटे गाँव लौटने को तैयार नहीं होते। वे पिता से ही कहते है कि आप गाँव छोड़कर चले। आइए हमारे साथ शहर में रहिए, गाँव में क्या रखा है? आज रघुनाथ जैसे असंख्य वृद्ध पिता हैं जिनके बेटे शहर चले गए हैं, जो गाँव नहीं लौटना चाहते। पिता को शहर आने को कहते हैं। जिन वृद्धि का जीवन खुले आकाश के नीचे गुजरा। इनमे सामूहिकता की भावना कुट कूट के भरी है। हमेशा एक दूसरे के सुख दुख के काम आए हैं। वे शहर कि चारदीवारी में कैसे कैद रह सकते हैं?

काशीनाथ सिंह ने 'महुआचरित' उपन्यास में मध्यवर्गीय नारी जीवन तथा उसके मन के द्वंद्व को दर्शाया है। यह उपन्यास केवल तन की बात नहीं करता बल्कि मन के रिश्तो के बनने बिगड़ने का चित्रण भी करता है। नारी को

लेकर पुरुष की मानसिकता को दिखाया गया है, पुरुष कई स्त्री से संबंध स्थापित कर सकता है लेकिन स्त्री के ऐसा करने पर पुरुष सवाल उठता है व चरित्रहीन कह देता है। जिससे संबंध टूट जाते हैं। वर्तमान समय में भ्रूण हत्या एक विकट समस्या है, जिसके निदान के बारे में महुआ सोचते हुए कहती है कि हम इसकी हत्या नहीं करेंगे, इसको जन्म देंगे, यह बच्चा कबीर की तरह समाज परिवर्तन करेगा। काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास में स्त्री स्वतंत्रता, स्वाभिमान तथा स्त्री चेतना के विकास पर व्यापक दृष्टिकोण रखते हुए पाठक को इस समस्या पर विचार करने हेतु मजबूर किया है।

'उपसंहार' उपन्यास उत्तर महाभारत के बाद की कथा है, इसमें वृद्ध कृष्ण की गाथा है। कृष्ण के द्वंदग्रस्त, अपराधबोध, मानवीय चरित्र का वर्णन है। काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास के विन्यास में मिथक का सहारा लिया है। हिन्दू धर्म में कृष्ण को अलौकिक शक्ति ऐश्वर्य सम्पन्न मना गया है जबकि लेखक काशीनाथ सिंह ने उत्तर महाभारत के माध्यम से कृष्ण के चरित्र को साधारण मानव के अंत की तरह चित्रित किया है। इस उपन्यास में कृष्ण महाभारत युद्धोपरांत आत्ममंथन करते नजर आते हैं कि कौरव सेना शक्ति शाली थी, बिना उनकी(कृष्ण) सहायता के पांडव विजय नहीं ही सकते थे। इस प्रकार पांडवों कि विजय छल का परिणाम थी। इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने शास्त्रीय संस्कृत परंपराओं को तोड़कर लोक शब्दों तथा शैली का प्रयोग करके इस कथानक को और रोचकता और मजबूती प्रदान की।

काशीनाथ सिंह के कथा साहित्य में लोक संस्कृति विषयक अध्ययन करते हुए शोधार्थी ने अनुभव किया कि काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य एक आम आदमी का संपूर्ण लेखा–जोखा है। लेखक प्रत्येक वर्ग, समाज, जाति, धर्म, लिंग सभी पर बराबर दृष्टि रखते हैं। काशीनाथ सिंह ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से लोक संस्कृति के विघटन को दिखाया है, भूमंडलीकरण के फलस्वरूप मानवीय मूल्यों के ह्रास, मानवीय संवेदना का पतन, संबंधों की

डोर कमजोर होते दिख रही है। इसलिए लेखक लोक संस्कृति की सुरक्षा पर बल देता है, जिससे एक अच्छे समाज का निर्माण हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ-

उपन्यास-

1. सिंह,काशीनाथ,अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

2. सिंह, काशीनाथ,काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

3. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

4. सिंह, काशीनाथ, महुआचरित, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

5. सिंह, काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

कहनी संग्रह-

1. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

2. सिंह, काशीनाथ, सदी का सबसे बड़ा आदमी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986

3. सिंह, काशीनाथ, कविता की नई तारीख, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979

सहायक ग्रंथ –

1. मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014

2. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

3. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

4. लाल, लक्ष्मीनारायण, कहानियों की शिल्प विधि का विकास, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1967

5. वाजपेयी, नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य, भारतीय भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, विक्रय संवत् 2022

6. सिंह, त्रिभुवन, उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1995

7. प्रसाद, जयशंकर, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, तक्षशिला प्रकाशन, 1937

8. अग्रवाल, प्रहलाद, हिन्दी कहानी सातवां दशक, भारतमुद्रणालय, दिल्ली, 1975

9. अरोरा, ज्ञानवती, समकालीन हिन्दी कहानीः यथार्थ के विविध आयाम, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 1994

10. सिंह, बच्चन, आधुनिक हिन्दी उपन्यास का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, 2012

11. श्रीवास्तव, परमानंद,कहानी की रचना प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2012

12. उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014

13. फॉक्स, रैल्फ, उपन्यास और लोक – जीवन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

14. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

15. शर्मा, सोहन, भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और हिंदी उपन्यास, हंस प्रकाशन, जयपुर, 2011

16. पल्लव (सं०), अस्सी का काशी(गल्पेतर का ठाठ)

17. श्रीमाली, ललित, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास

18. पाठक, (सं०) मानवेन्द्र, वैश्वीकरण हिंदी भाषा और साहित्य, अंकित प्रकाशन, नैनीताल।

19. पांडेय, डॉ अष्टभुजा प्रसाद, हिन्दी कहानी, शिल्प, इतिहास, आलोचना, लक्ष्मण प्रसाद शर्मा, हिन्दी प्रकाशन, वाराणसी,

20. लाल, लक्ष्मीनारयण, हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि, विकास साहित्य भवन प्रावलीव, जीरो रोड इलाहाबाद, संस्करण 1996

21. तिवारी, रामचंद्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, संस्करण 2016

22. लाल, डॉ लक्ष्मीनारायण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2001

23. अवस्थी,(सं॰) राजेन्द्र, : सत्रह आंचलिक कहानियॉ

24. रेणु, फणीश्वरनाथ, मैला ऑचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

25. सत्यनारायण, नागार्जुन, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 1991

26. नागार्जुन, बलचनामा, किताब महल, इलाहाबाद,

27. शुक्ल, श्रीलाल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2013

28. 28. जिलानी, डॉ दिलशाद, आधा गॉव : एक आलोचनात्मक अध्ययन,

29. मणि मधुकर, पिंजरे में पन्ना,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981

30. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016

31. सोबती, कृष्णा, जिंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

32. दुबे, अभय कुमार, भारत का भूमंडलीय करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

33. सिन्हा, सचिदानन्द , भूमंडलीय करण की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, 2005

34. चतुर्वेदी, डॉ. रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014

35. जगपात, डॉ रमेश, काशीनाथ सिंह का कथा साहित्य, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर 2006

36. टंडन, डॉ प्रताप नारायण, हिंदी उपन्यास का उद्‌भव और विकास, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, प्र. सं. 1974

37. त्यागी, डॉ. मुक्ता, समकालीन महिला उपन्यास कारों के उपन्यासों में नारी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2012

38. देसाई, डॉ. योगेश, गरीबीली गरीबी के कथाकार काशीनाथ सिंह, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2012

39. दूबे, मनीष, काशी पर कहन, मीरा पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 2002

40. मिश्र, रामदरस, हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1968

41. यादव, चौथीराम, लोकधर्मी साहित्य की दूसरी परंपरा, अनाधिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2013

42. पल्लव (सं.), गपोड़ी से गपशप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

पत्र–पत्रिकाएं–

1. ओम थानवी(सं०), जनसत्ता, नई दिल्ली, 2016

2. दिलीप अवस्थी(सं०), दैनिक जागरण, अलीगढ़, 2015

3. विमल झा(सं०), पुस्तक वार्ता, वर्धा, 2014

4. विजय राय(सं०), लमही, लखनऊ, 2014

5. कामेश्वर प्रसाद सिंह(सं०), चौपाल, एटा, 2014

6. मेवाड़ी, सं० कमर, संबोधन त्रैमासिक पत्रिका, अक्टूबर 2012 – जनवरी 2013, राजस्थान